फ़क़ीरों की सात मंज़िलें

(सन्तों का सप्त-दर्शन)

लेखक

सन्तवर डॉ. कृष्णस्वरूपजी महाराज

जयपुर निवासी

संशोधक व परिवर्द्धक

परमसन्त डॉ श्रीकृष्ण लाल साहब

सिकन्द्राबाद, (बुलन्दशहर) निवासी

अनुक्रमाणिका

१. प्रस्तावना

२. जीवनी

३ प्रथम अभ्यास - फ़क़ीरों की सात मंज़िलें या सन्त सप्त दर्शन

४. द्वितीय अध्याय - सात मंज़िलें - सप्त सोपान

५. तृतीय अध्याय (१) - संतों के पन्थ के तरीके

(२) - इश्क़ (उपासना)

(३) - मार्फत (ज्ञान) व (४) तौहीद

(५) - इस्तगना

(६) - फ़ना (लय)

(७) - बक़ा (पुनर्जीवन)

प्रस्तावना

संतवर डॉक्टर कृष्ण स्वरुप साहब, जयपुरी परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज फतेहगढ़ी के छोटे भाई थे. आपने महात्मा जी की सेवा में रहकर ब्रह्मविद्या की पूर्ण दक्षता प्राप्त की और उनकी आज्ञानुसार जीवन भर राजस्थान में ब्रह्मविद्या का प्रचार करते रहे. देहावसान के कुछ मास पूर्व जब मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ, तब उन्होंने मुझे यह पुस्तक दी ताकि मैं उसे पढ़कर जो त्रुटियाँ उसके लिखने में रह गयी हों, उन्हें दूर करके व आवश्यक सुधार करने के पश्चात उसे प्रकाशित करा दूँ. मुझे हार्दिक खेद है कि यह कार्य उनके जीवनकाल में पूर्ण न हो सका. अब यह पुस्तक त्रुटियाँ दूर करके और आवश्यक सुधार के पश्चात् सत्संगी भाइयों की भलाई के लिए आपके सामने प्रस्तुत की जा रही है.

इसमें संदेह नहीं कि लेखक ने फ़ारसी मिश्रित उर्दू भाषा का ही प्रयोग इस पुस्तक में किया है. वर्तमान हिंदी युग के पाठकों को इस पर सम्भवतः आपत्ति हो, परन्तु जहां तक सम्भव हो सका है भाषा को सरल बनाने का प्रयास किया गया है और कठिन शब्दों का अर्थ उनके पास ही कोष्टकों में दे दिया गया है. आशा है इतने से बहुत कुछ काम चल जायेगा और मतलब अच्छी तरह समझ में आ जायगा. सारी भाषा को ठेठ हिंदी में परिवर्तन कर देना तो सारी पुस्तक को ही बदल देना होगा, और ऐसा करने से लेखक के जो मौलिक उदगार हैं व नष्ट -प्राय हो जायेंगे.

यह पुस्तक एक अनमोल रत्न है जिसमें एक उच्च कोटि के संत के आध्यात्मिक जीवन के गूढ़ और आत्मिक अनुभव खोल खोल कर रखे गए हैं. आशा है कि पाठक, विशेषकर सत्संगी भाई, इसे ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे और अपने जीवन में उतारने की चेष्टा कर लाभान्वित होंगे.

ग़ाज़ियाबाद श्रीकृष्ण लाल

६ जून १९५९.

जीवनी

जनाब डॉक्टर कृष्णस्वरूप साहब एक मौज़िज़ कायस्थ घराने में फ़रुखाबाद में सन १८८० में पैदा हुए थे. आपके वालिद साहब का नाम चौधरी उल्फ़त राय था जो चौधरी हरबख्श राय साहब के छोटे भाई थे. चौधरी हरबख्श राय साहब के कोई औलाद ज़िंदा नहीं रहती थी इसलिए उन्होंने डॉक्टर साहब के बड़े भाई को गोद ले लिया था. गोद लेने के बाद उनके दो साहबज़ादे पैदा हुए, परमसन्त श्री रामचंद्र जी महाराज और परमसन्त श्री रघुवर दयाल जी साहब. ये दोनों ख़ानदान चौधरी हरबख्श राय की ज़िन्दगी में एक ही जगह रहे.

जब परमसन्त महात्मा श्री रामचंद्र जी ने हज़ूर महाराज मुंशी फ़ज़ल अहमद ख़ान साहब की शरण ली तो डॉक्टर साहब ने भी उनसे उपदेश लिया और कई साल तक आप उनकी ख़िदमत में हाज़िर होते रहे. बख्त विसाल मौलाना साहब ने डॉक्टर साहब को परमसन्त श्री रामचंद्र जी के सुपुर्द किया और फ़रमाया कि ये मेरा बहुत ही प्यारा पुत्र है, तुम भी इसी मोहब्बत से इसको अपने पास रखना. इसके बाद आप जनाब महात्मा जी की ख़िदमत में हाज़िर होकर फ़ैज़याब होते रहे. महात्मा जी ने आपको फ़रवरी सन १९३१ में कुल्ली इज़ाज़त देकर हुक्म फ़रमाया कि परमात्मा की याद में लगे रहो और जीवों का उद्धार करो. आपने डॉक्टरी तालीम आगरा मेडिकल कालिज से हासिल की. शुरू में अजमेर, जयपुर वगैरा में डॉक्टरी करते रहे और बाद को डॉक्टरी छोड़कर ब्रह्मविद्या का प्रचार आख़िरी वख्त तक करते रहे. आप ७८ साल की उम्र में १९ सितम्बर सन १९५८ को इस जिस्म को छोड़कर अपने परम् दयालु पिता परमात्मा की गोद में हमेशा के लिए आराम करने को चले गए. आप बहुत कम गो थे. ख़ुद किसी मज़मून पर फ़रमाना पसंद न करते थे. दरियाफ़्त करने पर मुख़्तसिर अलफ़ाज़ में जबाब देते थे. एकांत पसन्द थे. ज़्यादा वख्त तन्हाई और अभ्यास में गुज़ारते थे. लोगों की तरफ़ भी मुश्किल से रजू होते थे. मिज़ाज़ में ग़ुस्सा बहुत कम था. अगर कोई बात नापसन्द होती थी तो ख़ामोशी इख़्तयार कर लेते थे. आपने कई किताबें ब्रह्मविद्या पर तहरीर फ़रमाई है. (संत-वाणी वग़ैरा) जो अभ्यासियों के लिए बहुत कारामद हैं.

फ़क़ीरों की सात मंज़िलें

या

(सन्त सप्त - दर्शन)

प्रथम अध्याय

आसमान में हर तरह की आवाज़ें सूक्ष्म और स्थूल भरी हुईं हैं, मगर उन सूक्ष्म आवाज़ों को सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कान के पर्दे को लतीफ़ (सूक्ष्म) बनाकर उस दर्ज़े की आवाज़ों के साथ मिला लिया हो जिस दर्ज़े की आवाज़ें हो रही हों.

हमारे बाहरी कान किसी एक प्रकार के परमाणुओं (सेल्स) के बने हुए हैं और अंदर के कान किसी दूसरी प्रकार के परमाणुओं से बने हैं. बाहरी आवाज़ जो सुनाई दे जाती है वह उन्हीं मसालों की होती है जिनसे बाहरी कानों के परमाणु बने होते हैं और अंदर की आवाज़ जो घट-घट में हो रही है, वह उस मसाले से बनी होती है जिस मसाले से हमारे अंदर के कानों के परमाणु बने होते हैं. इसलिए बाहरी कानों से हम बाहरी आवाज़ों को ही सुन सकते हैं और अंदर के कानों से अंतर की आवाज़ों को. ब्रह्माण्ड में और हमारे अंदर अनेक प्रकार के शब्द हो रहे हैं लेकिन हम केवल उन्हीं शब्दों को ही बाहर और अंदर सुन सकते हैं जिनसे हमारे बाहर और अंदर के कानों की मुताबिक़त(समानता) होती है. बाक़ी और दूसरी आवाज़ों को जो और अधिक सूक्ष्म हैं हम नहीं सुन सकते. यही हाल आँखों के विषय में है. हमारी आँख उसी प्रकाश का ज्ञान हासिल कर सकती है जो उसी मसाले से बना है जिससे हमारी आँख बनी है, वर्ना नहीं.

सब ही प्राणी किसी न किसी शक़्ल में ज़बान से अपने ख़्यालात ज़ाहिर करते हैं मगर उनको सिर्फ़ वही सुन सकता है जिसने अपने कान की ताक़त को उस शब्द के मुताबिक बना लिया है, जो ज़बान से निकल रही है. इंसान इंसान की बात सुनता है क्योकि हम-जिन्सीयत (एक जैसी हैसियत) है. चींटी से चींटी मुंह मिलाकर बात करती है क्योकि उनमें यकसानियत (समानता) है. आवाज़ सिर्फ़ वही सुनी जा सकती है जिसके लिए कानों का माद्दा (ग्रहण शक्ति) हो, ,फिर चाहे आवाज़ मोटी हो या बारीक. इसी तरह रौशनी की कमी या ज़्यादती दोनों आँखों के लिए बेकार है. नज़र सिर्फ़ वही चीज़ आँक सकती है जिसको आँख क़बूल करे. इसी तरह हमारी नाक और ज़बान का हाल है.

दुनियाँ में सब कुछ है लेकिन जैसा जिसका ज़र्फ़ (अधिकार) है उतना ही मिल सकता है, ज़्यादा कैसे नसीब हो. और जो मिलने वाला है वह मिलकर रहेगा, इसमें ज़रा भी शक नहीं है.

मक़सूम, मुक़द्दर और क़िस्मत का साफ़ और दूसरा नाम ज़र्फ़ (क़ाबलियत, योग्यता या अधिकार) है. यही नसीब है, नसीब के और कोई मायने फ़िज़ूल हैं. जिसके जिस्मानी (शारीरिक), दिली, अक़्ली और दिमाग़ी आज़ा (इन्द्रियों) ने जहां तक अपनी तक़मील (पूर्णता) करली है, बस उसको उतना ही इल्म होगा और वहीं तक समझ होगी. अगर किसी को इससे इंकार है तो हमको लड़ाई करने की ज़रूरत नहीं है. यह मालूम हो जाये कि किसका कितना हौंसला है और कहाँ तक उसको पाने, लेने, देने, और खुद फ़ायदा उठाने का और दूसरों को फ़ायदा पहुंचाने का हक़ है. यही सबब (कारण) है कि हम बहस-मुबाहिसा (तर्क-वितर्क) वगैरा से भागते रहते हैं. आईना देखने को आँख की ज़रूरत है. अंधों को आईना दिखाना ग़लती है. वह क्या खाक़ समझेगा ?

हम जानते हैं कि रौशनी और आवाज़ की दुनियाँ में ख़ास हैसियत है. नादान कहता है " कुछ भी नहीं ". बहुत अच्छा, कुछ भी नहीं सही . यह भी सच्चा, हम भी सच्चे क्योकि सच्चाई सिर्फ़ निस्बती (आपेक्षिक या रिलेटिव) होती है और निस्बत के दर्ज़े होते हैं. उल्लू को सूर्य नज़र नहीं आता, चिमगादड़ को रौशनी दिखाई नहीं देती तो इनको बताने से क्या फ़ायदा ?

योगिराज भर्तहरि जो कह गए हैं कि इंसानी क़िस्मत एक छोटी लुटिया के बराबर है. चाहे उसको तालाब में डालो या समुन्द्र में, पानी उसमें उतना ही आवेगा जितनी बर्तन की ज़रफ़ियत (घनत्व) है. इसी तरह से आस्तिक और नास्तिक दोनों अपनी जगह पर सच्चे हैं. जो नहीं देखता वह कैसे किसी ख़ास हस्ती का क़ायल हो. जो देखता है उसको क्या हक़ है कि न देखने वाले के साथ लड़ाई करे. हाँ, जब तक देखने और दिखाने की क़ाबिलियत (योग्यता) से खाली है तब तक उसका कहना-सुनना बेसुद है.

इसका मतलब है कि क़ुदरत में हर जगह क़ाबिलियत (योग्यता) अधिकार व संस्कार का सवाल रहता है. वगैर अधिकार और संस्कार के कुछ नहीं मिलता और यही अधिकार और संस्कार परमात्मा के असली हुक्म पर मौक़ूफ़ (निर्भर) करता है.

बेवक्त किसी को भला कुछ मिला है ?

पत्ता वगैर हुक्म के कोई नहीं हिला है.

इसलिए जो इल्म इरफ़ान (ज्ञान) से बाख़बर हैं उनको सिर्फ़ अपने काम पर लगे रहना चाहिए. और दूसरों की रूहानी तक़मील (पूर्णता) वक्त के हवाले कर देनी चाहिए. ' क़ब्ल-अज़-बावैला '(मरने से पहले ही शोर

मचाना फ़िज़ूल है. हम धीरे-धीरे अपनी ज़िंदगी के मरहलों (समस्याओं) को तय करते चले जा रहें हैं. जो हालत आज है वो कल नहीं थी और जो कल होगी वह आज नहीं है. हम सब लोग तबदीली की हालत में रहते हैं. जब यह अच्छी तरह समझ लिया कि हालतें बदलती रहती हैं तो फिर किसी से क्यों उलझना चाहिए ? ख़ैरियत भी इसी बात में है कि सिर्फ़ अपनी तरफ नज़र रहे और जीवन के व्यावहारिक रूप का ज्ञान रखते हुए अपनी ज़ाती (निजी) भलाई का ख्याल हो -

जन्म-मरण दुःख यादकर , कूड़े-काम निवार,

जिन-जिन पंथों चालना, सोई पंथ संवार.

अपनी और निहारिये, औरों से क्या काम ,

सकल देवता छोड़कर, भजिये गुरु का नाम.

द्वितीय अध्याय

(सात मंज़िलें --- सप्त सोपान)

मज़हब फ़ुक़रा (संत-मत) के सात दर्ज़े हैं. जिनका इन अक़ीदों से तालुक़ है वे अच्छी तरह समझ लें कि सालिकों (पन्थाइयों या साधकों) को तरीक़ (पंथ) में दाख़िल होकर इनसे गुज़रना होता है, जिसके लिए पन्थाई को तैयार रहना चाहिए. यह बात इसलिए कही जाती है कि भोले-भाले आदमी अक्सर ग़लती से किसी एक मरहले (समस्या) में अटक कर नाहक़ अपना नुकसान कर बैठते हैं. कोई मजज़ूब (अवधूत) हो जाता है, कोई मस्त बन जाता है और इसी मजजूबियत और मस्ती को ही सब कुछ समझता हुआ उसी का हो रहता है. अगर यह हालतें उसकी अहलियत (अधिकार) के मुताबिक़ हैं तो कोई एतराज़ नहीं लेकिन अगर वह ग़लती का शिकार हुआ जाता है तो -

अगर बीनम कि नाबीना व चाह हस्त

अगर ख़ामोश बेनशीनम गुनाह हस्त

अर्थ : अगर देखने में आवे कि आदमी अँधा है और सामने कुआँ है तो ऐसी हालत में चुप होकर बैठना गुनाह है.

मजजूबियत व मस्ती सालिकों के नज़दीक अच्छी हालतें नहीं समझी जातीं हैं. मज़जूब के मानी है खिंचा हुआ. उसने किसी एक जगह की रौशनी को देखा, और हैरत में आकर बेखुद हो गया और उसी में ठहर गया. उस ग़रीब को आगे का पता नहीं मिला. तरक़्क़ी रुक गयी. ये हालतें बेसूद समझी जातीं हैं . दुनियां अगर इनकी इज़्ज़त करती है तो करने दो. इनको अपने मैराजे तमन्ना (चाहत का केंद्र) न बनाओ बल्कि समझ बूझकर किसी आंतरिक अभ्यासी की मदद से जानकारी प्राप्त करके पहले से ही हर बात को समझो , ताकि अगर यह हालतें पैदा हो जावें तो उनसे ऊपर उठकर अपना काम बना सको. मौज़ूदा वक्त की क़द्र करो. यह आदर्श होना चाहिए. क्या ख़बर दूसरे जन्म में क्या हो ?

जन्म का मतलब यह नहीं है कि इंसान यह जन्म छोड़कर दूसरा जन्म ले. हमारा शरीर छोटे-छोटे परमाणुओं (cells) का बना होता है. शरीर के परमाणु हर २४ घंटे बाद बदलते रहते हैं. पुराने परमाणु ज़ाया (नष्ट) हो जाते हैं, और नए बन जाते हैं. जिस्म की तबदीली इसी एक जन्म में भी मुमकिन है. हर तीसरे, सांतवे

या चौदहवें वर्ष इंसानी जिस्म के सारे ज़र्रात (सेल्स) व गोश्त वगैरह बदल जाते हैं. आज के लड़के कल के जवान, परसों अधेड़ और अतरसों बूढ़े हो गए. कहो क्या यह नए-नए जन्म हुए या नहीं ?

जन्म नाम है तब्दीली का. एक हालत जाती है, दूसरी आती है. जब तक मुसाफ़िर मंज़िले-मक़सूद तक नहीं पहुंचता तब तक रात के नज़्ज़ारे, बियाबान जंगल और पहाड़ों के तमाशे आँखों के सामने आते रहते हैं मगर आख़िरी मंज़िल पर पहुंचकर मेराजे-तमन्ना (इच्छित लक्ष्य) से मिल गया फिर ये सारे झगड़े नज़र से ओझल ही हो जाते हैं.

इस लिए कहा गया है कि मजजूबियत व मस्ती को हाथ न लगाओ, यह बीच की हालतें हैं. इनमें जो फंसा वह मारा गया. आगे क्या होगा न हम जानते हैं न हमारे फ़रिश्ते. सत्यपुरुष की वाणी है :

एक जन्म गुरु-भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम,

जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम.

इन मंज़िलों (दशाओं) के हासिल करने के लिए सालिकों (पन्थाइयों) को सात हालतों (अवस्थाओं) में से गुज़रना पड़ता है जिसको मज़हब फुकरा (संतमत) का ' हफ़्त-ख़्वान ' कहते हैं जिसके माने हैं ' सात दस्तर-ख्वान' जिनसे सालिकों (पन्थाइयों) को अक्सर गुज़रना पड़ता है. ये कड़े भी हैं और सरल भी. सारी बात इंसान के हौसले और शौक़ पर मुनहसिर (निर्भर) है. खुशमिज़ाज़ अपने काम को तफ़रीह और दिलबस्तगी (मन बहलाव) का सबब बना लेते हैं और चिड़चिड़ा आदमी उसी को जान की बला बना लेता है. किसी ने सीधी और सरल जुबान में बयान किया है, किसी ने इशारों की मदद को काम में लिया है और किसी ने और किसी तरह पर ज़ाहिर किया है. यह अपनी-अपनी चाहत और पसंद की बात है. हम सहल पसंद करने वाले आदमी हैं.

सख़्त व मुश्किल शब्दों का हमारा उसूल नहीं रहा और इसी सबब से जो हमारी सुनते हैं और हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं उनको मामूली ज़बान में बता देते हैं. हम हमेशा यही सलाह देंगे कि सहल और आसान बातों को अपना रहबर (मार्गदर्शक) बनाया जावे, क्योकि सख़्त और मुश्किल बातों से दिल उलझन में फंस जाता है.

ये सात मंज़िले (सोपान) यह हैं :- (१) तलब (जिज्ञासा) (२) इश्क़ (उपासना) (३) मारफ़त (ज्ञान)

(४) तौहीद (अनेक से एक पर आना) (५) इस्तगबा (उपराम होना) (६) फ़ना (लय) (७) बक़ा (पुनर्जीवन)

(१) **तलब** - तलब कहते हैं इच्छा, जिज्ञासा, आरजू और ख्वाहिश को.

(२) **इश्क़** - इश्क़ कहते हैं ख्वाहिश के घनेपन की हालत को जिसको कि आम लोग मौहब्बत, भक्ति, प्रेम, उपासना वग़ैरा कहते हैं. इन दोनों की शुरुआत ख्याल से है. ख्याल की गहराई हुई ख्वाहिश का ही दूसरा नाम इश्क़ है.

(३) **मारफ़त** - (ज्ञान और पहिचान)- जब ख्याल पैदा हुआ और घना होने लगा तो उसकी हालत आपसे आप समझ में आने लगती है और आदमी उसको जानने पहिचानने और उसकी तशरीह (व्याख्या) करने के क़ाबिल हो जाता है. इसी का नाम ज्ञान या मारफ़त है. पहली हालत ध्यान की थी. वही ध्यान घना होने पर इश्क़ कहलाया और इश्क़ के होने पर चीज़ की पहिचान होने लगी. इसी को ज्ञान या मारफ़त कहते हैं. तीन हालतें खत्म हो गयीं.

(४) **तौहीद** - (एकभाव) यह और कुछ नहीं है सिर्फ़ ख़्वाहिश की निहायत घनी सूरत ही है. जब ख्याल में उभार हुआ और उसको ध्यान व ज्ञान से तरक़्क़ी व ताक़त मिलने लगी तो वही तौहीद हो गयी. यह वेदान्तियों का दर्ज़ा है. यहां पहुंचकर बाज़ बाज़ लोग दिल के जज़्बे (भाव) को ज़ब्त करने की ताक़त न रखते हुए 'अनहलहक़ ' या अहंब्रह्म ' की आवाज़ सुनाने लगते हैं. यह हालत बीच की है. यही सब कुछ नहीं है और न हो सकती है. माना कि यह दर्ज़ा ऊंचा है, इस दर्ज़े तक पहुंचने का काम भी कठिन है, मगर यह मंज़िल (अवस्था या आयाम) आखिरी नहीं है, न हो सकती है, न होगी.

वेदांती कहता है कि - " एकोब्रह्म द्वितीयो नास्ति " (ब्रह्म एक है, दो नहीं) और वह बड़े ग़रूरऔर घमंड के साथ दलील देता है कि अब इसके आगे क्या रहा है ? सोचने की बात है कि 'एक ' सिर्फ निस्बती लफ्ज़ (अपेक्षित या relative term) है. एक के पेट में ही अनेक रहते हैं. जहाँ वहदत (एकता) होगी वहां वहदत के पेट ही में कसरत (अनेकता) रहेगी. अगर कसरत न होती तो वहदत का ख्याल कैसे पैदा होता ? बात साफ़ है, लगाव लपेट का काम नहीं. समझने वाले समझ लें, जो न समझे न सही.

दूसरा कहता है " ला इलाह इललीलाह (कुछ नहीं है सिवाय परमात्मा के). इनका भी यही हाल है. दोनों अधर में लटके हुए हैं और ख्याली झूले में पेंग मार रहे हैं, मगर दिल्ली अभी दूर है. यह जगह मजजूबियत (अवधूतपन) और खतरे की है. यहां भी माद्दा (प्रकृति) है, नहीं तो कौन कहता और कौन अनेक की आवाज़ लगाता. ' जनहलहक़' और 'अहंब्रह्म ' को 'अना' (नहीं हूँ) और 'अहं' (मैं) से साफ़ करना अभी बाक़ी है. जंब सिर्फ 'हक़' रह जायेगा तब देखा जायेगा.

पहुंचेंगे तब कहेंगे, पहले कहा न जाय

भीड़ पने मन मसखरा, लड़े विधौ भंग जाए

इस मुक़ाम पर पहुंचने वालों की खैरियत नहीं है. हम उनकी ताज़ीम (सराहना) करते हैं, उनके नाम और ज़ज़बात (भावनाओं) की हमारे दिल में इज़्ज़त है. ख़ैर यह दर्ज़ा भी आ गया मगर इसमें टिकाब नहीं है, फिसल पड़ने का डर है. क्योकि माद्दा साथ है. इंसान कभी एक का होकर नहीं रहना चाहता. उसकी तबियत ताज़गी पसंद है.

(५) **इस्तगना** - उपरामता) जब एकपना व 'एकोभाव' से जी भर गया तब उससे तबियत ऊब गई. अब एक हो या अनेक - इन दोनों में से किसी से कुछ लेना देना नहीं. बात समझ में आ गई. अब न रग़बत (लगाव) है और न नफ़रत. इसी को इस्तगना कहते हैं. इसी इस्तगना को उदासीनता (उपराम होना) कहते हैं.

(६) फ़ना (लय) - इस्तगना की हालत जब पुख्ता हो गई उसी को फ़ना कहते हैं. फ़ना के मायने 'मर जाना' या 'मादूम' (नष्ट) होना नहीं है. क़ुदरत में कोई चीज़ मादूम नहीं होती और न हो सकती है. मादूम होना एक ऐसी हालत है जिसमें ज़ाहिर होने की तमन्ना (इच्छा) नहीं रहती. यही मंज़िले-मकसूद (लक्ष्य) है.

(७) **बक़ा** - (पुनर्जीवन) जब तक फ़ना व उसकी हालत नसीब (अवस्था की प्राप्ति) नहीं होती तब तक बक़ा व सत्य का मिलना बड़ा मुश्किल (कठिन) है.

न फ़नाये खुद मयस्सर नेस्त दीदारे ख़ुदा

मी फ़रिशद खेशरा अव्वल ख़रीदारे ख़ुदा

अर्थ - जब तक ख़ुद फ़ना नहीं होता, ख़ुदा नहीं मिलता. ख़ुदा को खरीदने वाला पहले ख़ुद को बेचता है.

अब भी अगर समझ में नहीं आया तो ऊपर की इबादत को कई दफ़ा पढ़ो. ग़ौर से पढ़ने से समझ में आ जायेगा.

मज़हबी मुनादी करने वालों से अगर कोई बात पूछी जाये तो वे ऐसी भाषा बोलेंगे जिससे सुनने वाले की अक़्ल भरमा जाय, और वे सुनकर कुछ न कह सकें. ऐसा करने का मतलब होता है कि सुनने वाला उनको बहुत बड़ा और ज्ञानी समझे. उनमें अपनी गांठ की अक़्ल नाम मात्र की भी नहीं होती.

तृतीय अध्याय

(1) संतों के पन्थ के तरीक़े

देखो साहबो ! यह सात मंज़िल की सैर भी अपने आप होती रहती है. असल में कुछ करना-धरना नहीं है. जो है वह है. मगर यह बात आम और मामूलीआदमियों के लिए नहीं कही गयी है. उनको तो कुछ न कुछ करना-धरना ही है और करना चाहिए. मगर जिनको भेद समझने की ताक़त है और वे जानते हैं कि सब कुछ अपने आप से हो रहा है, हाँ शुरू दर्ज़े वालों को तो काम करना ही है. वह भी उसी उसूल के मुआफ़िक होगा और हो रहा है जिनको इशारों में कुछ ऊपर बयान कर दिया है.

दादू दयाल साहब कहते हैं :--

नहीं जहां से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय

दादू ऐसा सोचकर, तू मत धोखा खाय

नाहीं वहां से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय

दादू नाहीं हो रहो, साहब से लौ लाय

उपजे बिनसे गुण धरें , हाय माया का रूप

दादू देखत थिर नहीं, छिन छाया छिन धूप

दादू दावा दूर कर, फिर दावा दिन काट

केते सौदा कर गए, पंसारी की हाट

दादू दावा आदि की, नीर दावा कैसा

दिल का दुश्मन दूर कर, सौदा कर ऐसा

जीवन भारी हो रहो , साईं सन्मुख होय

दादू पहले मर रहो, पीछे मरे सब कोय .

अब सन्तों के पंथ के तरीक़ों के इशारे सुनो. (१) तीसरा तिल = तलब (२) सहस्त्रदल कंवल = इश्क़ (३) त्रिकुटी = मारफ़त (४) सुन्न = तौहीद (५) महासुन्न = इस्तगना (६) भंवर गुफ़ा = फ़ना(७) सतलोक = बक़ा

१. तलब - तलब हमेशा दिल की ताक़त से पैदा होती है. वही इश्क़ मारफ़त, तौहीद, इस्तगना, फ़ना में तब्दील होकर बक़ा हो जाती है. बक़ा तो अब भी है. लेकिन ख्याली पर्दों ने ढक रखा है. अमल और शग़ल इन्हीं पर्दों को हटाने का नाम है. जब ये पर्दे हट जाते हैं तब बेनाशवान रौशनी नज़र आने लगती है. रौशनी तो अब भी है, उसमें फ़र्क़ कहाँ? मगर जैसे आँखों पर ऊँगली रख लेने से चाँद दो, तीन, चार दिखाई देने लगते हैं या अगर ऊँगली आँखों के बिलकुल सामने आ गयी तो चाँद बिलकुल ग़ायब मालूम होने लगता है. इसी तरह उसकी भी हालत है. हालात, बसवसात (वहम) खादशात (शकशुबहा) और ख़तरात (विवेक के दौरान जो विघ्न आते हैं) बीच में पर्दे होकर आ जाते हैं. यह असल में ख़्याली ही हैं. मगर ख़्याल जिस तरह पैदा हो गया ही उसी तरह हटाना भी है. और वह इसी तरह हटता भी है. हटेगा, और ज़रूर हट कर रहेगा, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों. इस पर विश्वास रखना चाहिए और काम ख़ुद बख़ुद बनता चलेगा.

कोई कोई साहब दरियाफ़्त करते हैं कि सालिकों (पन्थायीओं) से चलने और चढ़ने को कहा जाता है. एक मुक़ाम से दूसरे मुक़ाम पर चलना और चढ़ना होता है. इसका क्या मतलब ? गो इसका जबाब पहले आ चुका है मगर फिर भी कहे देता हूँ कि चलना और चढ़ना हरकत है. ख्याल की हरकत ने तारीको (अंधकार) पैदा की. अब ख्याल ही के हटाने से तारीकी दूर होगी. ऊँगली आँख पर आगयी, चाँद गायब हो गया. अब तो वह ऊँगली हटाने पर ही नज़र आएगा. यही चलने और चढ़ने का मतलब है, बाक़ी और कुछ नहीं. जिन रास्तों से होकर सुरत नीचे उतर आयी अब उन्हीं रास्तों पर चलकर चढ़ने से मंज़िल पर पहुंचेगी. अगर मर्ज़ी हो या समझ में न आयी हो तो और ज़्यादा साफ़ कहा जाय. सुनो ! यह दुनियां मिसाल की जगह है. मिसाल से बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है, और अगर नज़र चारों तरफ जाती है तो दुईते (दो विचारों वाले) को क्या मिला है जो अब मिलेगा. मसल मशहूर है :

' दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम "

ग़ौर से सुनो ! एक बच्चा है जो अपनी माता के पेट से बाहर आया है, उसको ग़िज़ा की ज़रूरत है. मुंह खोलता है, अंगड़ाई लेता है, माता झट अपनी छाती से लगा लेती है. यह 'तलब' है. जब तलब में ताक़त आयी, वह रोता है, शोर मचाता है, माता उसके ज़ज़्बात (भावनाओं) को जानती है और ताज़ीम (आदर) करती है, यह ' इश्क़ ' है. रोना, पीटना, शोर करना, इश्क़ की अलामत (लक्षण) हैं.

कबीर साहब कहते हैं :

कबीर हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीत,

बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय

हंसी ख़ुशी से जो हरि मिलें, तौ कौन दुहागिन होय

सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे

दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे

बच्चे में अभी इश्क़ है, वह नहीं जानता कि उसको ग़िज़ा (भोजन)कौन देता है. इश्क़ ने हाथ पाँव मारना शुरू किया. वह माता को पहिचानने लगा. यह ' मारफत ' और 'ज्ञान ' है.

जब वह माता को पहिचानने लगा तब उसको ताक़त ज़्यादा मिली. अब वह सब औरतों के बीच में अपनी माता को पहिचान लेता है, और उसकी गोद में ख़ुशी तलाश करता है. जब उसका यह ज्ञान पुख्ता हो जाता है तब ' तौहीद ' का दर्ज़ा आ जाता है. माता और बच्चा मिलकर एक हो जाते हैं. इससे पहले वह शायद किसी दूसरे के पास तो रहता हो मगर उसकी नींद जब खुलेगी माता की याद आवेगी और उसको सिर्फ़ माता के पास चैन मिलेगा. क्योकि चैन जब ही मिलता है जब दो मिलकर एक हो जाते हैं. इस तरह माँ और बच्चे की वहदानियत को देखकर प्रेम का सबक़ सीखना चाहिए. वह उसी से ज़िद करता है, कपड़े फाड़ देता है, गाली दे बैठता है, गुस्सा भी हो जाता है. माँ भी उसे खूब पीटती है. फिर भी भला कोई कोशिश करके उसको माँ की गोद से हटा तो ले तो मैं मर्द समझूँ. सब कुछ हो जाय मगर वह माँ का है और माँ उसकी है. दोनों इस बात को बिना समझाये समझते हैं. तौहीद समझने और समझाने का मज़मून नहीं है. यह दिल का जज़बा (भाव) होता है. इसमें असलियत है, जिसकी तस्बीर कोई फ़ोटोग्राफर नहीं खींच सकता न कोई कवि ख़्याल में ला सकता है. बच्चा माँ का गोश्त व पोस्त है. पैदायश की जड़ और असल है. यह इल्म किसी किताब या उपदेश से नहीं लिया गया है.

बच्चा कितना ही मैला क्यों न हो और माँ कितने ही साफ़ कपड़े क्यों न पहने हो बच्चे को कींचड़ में देखकर माँ उसको तुरन्त गोद में उठा लेगी. शेर या भेड़िया आया या और कोई डरावनी सूरत नज़र आयी, बच्चा कहाँ

जायेगा ? माँ की गोद की तरफ भागेगा. कोई कितना ही समझाये कि माँ में बचाने की ताक़त नहीं है, मगर वह कब किसी की सुनेगा, वह सबसे ज़्यादा अक्लमंद है, वह जब झुकेगा अपनी असल की तरफ झुकेगा.

जब इश्क़ ज़ोर पर आता है और मारफ़त हो जाती है तौहीद (अनेक से एक पर आना) आप से आप भागी आती है. बुलाने की ज़रूरत नहीं होती.

दिल की अंगीठी में इश्क़ की आग भड़क रही है, जिसकी गरज़ हो आकर बुझाये. जलता है जल जायेगा उसको क्या परवाह है, मगर नहीं :-

आग जलती देखकर, साईं आये धाय

प्रेम बूँद छिड़ककर, जलती लई बुझाय

बच्चा जब रोता है तो माँ हज़ार काम छोड़कर चली आती है. इसी तरह तलब, इश्क़ और मारफ़त के पैदा होते ही तौहीद (एकभाव) आ जाती है और तालिब (तलाश करने वाला) व मतलूब (जिसकी तलाश की जाती है) दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. जब तौहीद पुख्ता हो जाती है तो 'इस्तगना' (उपराम) आ जाती है. एक हालत कभी नहीं रहती. बच्चा बेपरवाह हो गया, माँ को पहिचान लिया. उससे मिलकर एक हो गया, अब वह खेलता फिरता है. माँ बुलाती है, वह खिल-खिलाकर हँसता है और आगे दौड़ जाता है. दोनों में खेल हो रहा है. कौनसा खेल ? तौहीद का खेल. कोई नादान यह न कहे कि माँ और बच्चा दो नज़र आते हैं. अगर ऐसा कहे तो समझलो कि उसकी आँखों में बीमारी है जिससे एक चीज़ दो दिखाई देती हैं.

बच्चा बढ़ा और बढ़ कर अपने आप में महब (गुम) हो रहा. यही फ़ना है. तौहीद की मंज़िल से वह ऊपर आ गया, ख़ुदी में बेखुदी है. कुछ दिनों यह हालत रही, फिर बक़ा (पुनर्जीवन) है . अब उसको पीछे की मंज़िल से कोई सरोकार नहीं रहा.

एक मामूली टूटी फूटी मिसाल से असलियत समझाने की कोशिश की गयी. अगर समझ में आ गयी तो ऐन ख़ुशी की बात है अगर नहीं समझ पाया तो जाने दो. अभी बुलंद नज़री नहीं आयी. फिर कभी देखा जायेगा.

एक साहब तसव्वुफ़ पसंद (सूफी मज़हब पसंद करने वाले) ऊपर के मज़बून को सुनकर बोले

कि - " यह सब सच हो मगर आप हमेशा ' गुरु गुरु ' क्यों किया करते हैं, यह सात मंज़िलें तय करने में तो गुरु की ज़रूरत ही नहीं होती.

वाह ! भाई वाह !! यह तो वही मसल हुई जैसे कोई कहे कि बच्चे को माँ की ज़रूरत नहीं, तालिब (विद्यार्थी) को उस्ताद (शिक्षक) की ज़रूरत नहीं. मौज़ूदा हालत में यह मुश्किल बात है.

वगैर गुरु की मदद के रूहानियत (आध्यात्म विद्या) को प्राप्त करना आसान काम नहीं है. माँ अगर न हो तो बच्चे का इश्क़ पुख्ता (पक्का) कैसे हो ? उस्ताद अगर न हो तो तालिबइल्म (विद्यार्थी) में पुख्तगी (परिपक्वता) कैसे आवे.? इसी तरह अगर रूहानियत (आध्यात्म) का गुरु न हो तो इल्म रूहानियत (आध्यात्म विद्या) कैसे नसीब हो ? यहां तो क़दम-क़दम पर सहारा लेने की ज़रूरत है. मगर ख़ैर कौन ज़्यादा उलझे. सुनो फिर वही बात दुहरायी जाती है. तालिब (जिज्ञासु) में रूहानियत (आध्यात्म) की तलब पैदा हुई, वह गुरु की ख़िदमत में गया और बच्चों की तरह उनके कलाम (वचनों) में से रूहानी ग़िज़ा (आत्मिक आहार) पाने लगा और उससे पलने लगा. मुहब्बत से गुरु का प्रेम पैदा हुआ. प्रेम से उसके असली रूप की पहिचान आयी और इस पहिचान से गुरु की ज़ात के साथ यकसू (एकता) होने का मौक़ा हाथ आया. कबीर साहब फरमाते हैं :-

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नायँ

प्रेम गली अति सांकरी , या में दो न समांय .

अब गुरु-चेला दोनों मिलकर एक हो गए. एक के दिल का असर दूसरे के दिल पर पड़ने लगा. फिर इसके बाद वही उदासीनता या इस्तग़ना वही बक़ा और सत्य लोक के दर्ज़े नसीब हुए.

इतना सुनकर वाह साहब बोले, " फिर अलहदगी हो गयी कि नहीं ? बेपरवाही आयी तो गुरु छूट गए.

भाई तौहीद (दो से एकपना) में जुदाई (अलहदगी) कैसी ? पहले गुरु और चेला दो रूप वाले थे अब तो दोनों इस तरह हो गए कि गुरु और चेले तक के भाव का पता नहीं. इस विषय पर कबीर साहब की वाणी सुनो :

सबाल - *गुरु हमारा कहाँ है,   चेला   कहाँ   रहाय*

क्यों करके मिलना हुआ, कैसे बिछुड़े जाय

जबाब - *गुरु हमारा गगन में, चेला है   चित माँय*

सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहुँ नाँय

गुरु नाम है आदर्श का जो चेले के दिमाग़ व दिल में सतगुरु की ज़ाहिरी सूरत की मदद से दाख़िल हो जाता है, उससे जुदाई कैसे हो सकती है ? इसी को फ़ना-फ़िल-शेख़ (गुरु में लय होना) कहते हैं.

ज़ेरे अफ़लाक से तहतुस्सरा के गार में आये

उतर कर अर्श से, इस दारे नाहिंजार में आये

न तुम समझो कि हम दुनियां के कारोबार में आये

गरज़ थी इश्क़ के सौदा से , इस बाज़ार में आये

अदम से जानिए हस्ती तलाशे यार में आये

हबिसे गुल में हम इस बादिये पुरखर में आये

अर्थ :- आकाश से उतर कर इस मृत्यु लोक के गढ्ढे में आये हैं. हम जिस ऊंची हालत को लिए हुए थे या जो हमारा असली रूप था उसको छोड़कर हम इतने नीचे गिरे कि पाशविक वृत्ति में दिखलाई देने लगे. यह मत समझो कि हम इस दुनियाँ के कारोबार में अपने को लगाए हुए हैं . हमारी गरज़ तो सिर्फ प्रेम थी और उसी की तालाश के लिए हम इस दुनियाँ रुपी बाज़ार में आये हैं. हमने उस प्यारे प्रीतम कीम खोज में शून्य से निकलकर यह आकार धारण किया और फूल की तलाश करते-करते कांटेदार झाड़ियों में आ फंसे.

आने को दुनियाँ में चले तो आये. कैसे आये? यह नहीं जानते. आये हैं, इतना जानते हैं. क्यों आये हैं ? इसको भी कुछ-कुछ जानते हैं, मगर ज़ाहिर करने की ताक़त नहीं है. दिल को किसी चीज़ की ख्वाहिश (चाह) है, उसकी तलाश है और रात-दिन उसी तलाश में हैरान और परेशान रहते हैं . जिस तरह समुन्द्र में लहरें कभी आसमान की तरफ जाती हैं, कभी किनारे से टकराती हैं, इसी तरह की उठक बैठक में हम भी पड़े रहते हैं. जिस तरह दरिया में ग़ोता लगाने वाला कभी नीचे कभी ऊपर जाता है , हम भी दुनियाँ के दरिया में ग़ोताखोर हैं. तह में घुसते और उभरते रहते हैं. जब तक मोती हाथ नहीं आता इसी कोशिश में पड़े रहते हैं. इसी का नाम जन्म-मरण, द्वन्द की अवस्था व संसार है.

बच्चा संसार में आता है. अगर उस छोटे बच्चे के ज़ज़्बात पर ग़ौर किया जाय तो उसमें तीन बातें मिलेंगी.

१. - भोग का शैदाई (खाने पीने की ख्वाहिश रखने वाला)

२.- हर चीज़ की माहियत (असलियत) को जानने की ख्वाहिश

३. - नुमायश (दिखावे) का क़ुदरती शौक़

यह तीन बातें हर बच्चे में मिलेंगी चाहे वह इंसान की औलाद हो या हैवान की. वह हर चीज़ को मांगता है, हर चीज़ की माहियत (असलियत) का इल्म लेता और अपने आप को दिखाता चलता है. इस भोग-विलास व इल्मी तालाश व खुदनुमायी (अपने को दिखने की इच्छा) की कोई हद नहीं. जो चीज़ पसंद की देखता है, उसी को लेना चाहता है. अपने सामने दूसरे की ज़रा भी परवाह नहीं. एक चीज़ से रगवत (लगाव) कम हुई तो दूसरे की चाह. मगर चाहता है सिर्फ अपने फायदे की चीज़. अगर कोई कड़वी दवा या कड़वी चीज़ दी जाय तो मुंह फेर लेगा. यह ज़ज़्बा सिर्फ़ इंसानी बच्चों में ही नहीं है बल्कि हैवानों के बच्चे भी इससे ख़ाली नहीं हैं . बल्कि अपनी ग़िज़ा को चुनने में इंसान से ज़्यादा तमीज़ रखते हैं. अगर हैवानों की हालत पर गौर किया जाय तो बहुत से सबक़ मिलते हैं. ना-मरगूब (जो पसंद न हो) चीज़ की तरफ आँख भी नहीं उठाते, इनको बताने या सिखाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. यह जानवरों में तो देखते हो मगर बेजान जिन्हें समझा जाता है वे भी इनसे ख़ाली नहीं मिलेंगे. वे भी किसी चीज़ को अपनी तरफ खींचते व दूर करते रहते हैं. हर चीज़ को बढ़ने, पूरा होने और सबसे मिलकर एक होने का क़ुदरती शौक़ है. इसी क़ुदरती शौक़ का नाम " तलब " है.

यहाँ न कोई जानदार है और न बेजान है. जिसने जैसी अपनी निगाह बना ली उसी निगाह से वह चीज़ों को देखा करता है और हर चीज़ को जुदा -जुदा समझता है. जो चीज़ हमारी हालत के साथ मेल रखती है उसे हम जानदार कहते हैं और ज़ाहिरा हम से मेल नहीं रखती उसको बेजान कहते हैं. मगर हक़ीक़त (असलियत) क्या है ? यहाँ हरेक ज़र्रा (परिमाणु) हरकत में नज़र आता है. एक परिमाणु को खींचकर दूसरा साथ कर लेता है.

लकड़ी के ज़र्रात(अणुओं) में हरकत है और वे कुछ समय में एक हो जाते हैं. हर चीज़ की हालत बदला करती है और हमेशा ही यह तबदीली का क़ानून जारी रहता है. इस तबदीली से साफ़ ज़ाहिर होता है कि उनके अंदर के ज़र्रात (अणु) हरकत में रहा करते हैं और हरकत का होना जानदारी की दलील (प्रमाण) है. मौजूदा निगाह की हालत से कोई कुछ ही कह ले, क्या इससे किसी को इनकार है ? हमारे ख्याल से इनकार नहीं होना चाहिए क्योकि ऐसी नज़ीर (मिसाल) हर वक्त देखते, सुनते और महसूस करते रहते हैं. राग व द्वेष इसी जज़्बे तलब के नतीजे हैं.

मौजूदा ज़िंदगी में जो चीज़ हमारे माफ़िक़ है उससे हम मिलने की ख्वाहिश रखते हैं और जो माफ़िक़ नहीं है उससे अलग रहना चाहते हैं.

कोई पूछ सकता है कि अगर सबको एकपने का सौदा (खब्त) है तो यह रगवत (लगाव) और नफरत

कैसी ? हम जैसे हैं वैसों ही के साथ वैसे ही सामान के साथ हमारी रगवत है और जो चीज़ इस बात से ख़ाली है उसको हम फूटी नज़र से भी देखना नहीं चाहते. हम इस क़ुदरती जज़बे (प्राकृतिक भावना) को तलब कहते हैं. तलब, तालिब (इच्छुक), मतलूव (जिसकी इच्छा की जाय) - ये तीन ज्ञान के ज़रूरी, लाज़मी (आवश्यक) और पहले ज़ीने (सीढ़ी) हैं. यह न हों तो हमारा काम नहीं चल सकता. यह मजबून ऐसे हैं जो बहुत समय चाहते हैं. ज़्यादा उलझनों में डालना मंज़ूर नहीं है. सिर्फ़ समझने को इशारा काफ़ी होता है. बड़े लोगों का कहना है कि " अकलमंदों को इशारा काफ़ी है " . मिसालें बहुत सी दी जा सकती हैं.

तलब अपना काम करती है. ज़िन्दगी शुरू हो गयी है, उसके अंजाम (अंत) की अभी खबर नहीं है. नादान और नातजुरबेकार (अनुभवहीन) लोग फ़क़ीर और संतों के मज़हब (मत) का मज़ाक़ उड़ाते हैं, वे नहीं जानते कि उनकी तालीम (शिक्षा) सब की चोटी पर है.

चुम्बक पत्थर लोहे को अपनी तरफ खींचता है. इसी प्रकार हमारी चुम्बक इस दुनियां और इस संसार रुपी लोहे को अपनी तरफ़ खींचती रहती है. इस खींचने में कशमकश (खींचातानी) है और कशमकश दुःख का तमाशा है जिसमें ज्ञान हमको समझाता रहता है कि जिस चीज़ की ज़रूरत है हम उसी से ताल्लुक़ पैदा करें. बाक़ी दूसरी चीज़ों को नज़र से हटाते जायें. इसी से हमारा काम बनेगा.

यही ज्ञान हक़ीक़त (वास्तव) में हमारी अमल (अभ्यास) और शग़ल (अभ्यास) कॉलोफैल (वाणी और

कर्म) जप, तप, आदि की कमाई का तजुरबा है. यही हिदायत करता रहता है कि 'नेक बनो' हिल्म (आधीनता) और इनकसारी (दीनता) सीखो. सब से मौहब्बत करो, ओट ग़रूर (अहंकार) को छोड़ दो क्योकि इन्ही की मदद से कामयाबी हासिल कर सकोगे और अगर गुमराह (पथभ्रष्ट)होते हो तो तुमज जानो. भटकते रहोगे, परेशान रहोगे, पशेमान (दुखी) रहोगे. मुमकिन है इस तरह करने से पहले हमें कुछ दुःख मालूम हो क्योकि आदत को बदलने में दुःख ज़रूर मालूम होता है. मगर जब आदतें दुरुस्त हो जाती हैं, उसी रास्ते को हम सच्चा रहबर (रास्ता बताने वाला) पाते हैं और उसी की कद्र करने लगते हैं और उसी की मदद से ताक़तवर (शक्तिशाली) होकर आगे बढ़ते हैं. यह तलब की पहली मंज़िल है. शुरू में उसकी शक्ल कैसी ही भद्दी नज़र आवे परन्तु धीरे-धीरे खूबसूरत होती जाती है और शानदार नज़र आती है.

संग-तराश (पत्थर का काम करने वाले) को तसबीर बनाने का ख्याल पैदा होता है. यह ख्याल हक़ीक़त में तलब ही है. मुमकिन है वह पहले साफ़ नज़र न आवे और दिल इससे हिचकिचाए, परन्तु धीरे-धीरे जब वह पत्थर पर हथोड़ा मारने लगता है, उसमें नई-नई खूबसूरती पैदा होती है और वह शांत चित्त होकर अपना काम करने लगता है. भद्दे पत्थर में से एक खूबसूरत मूर्ति निकाल कर रख देता है.

एक जिज्ञासु गुरु की शरण में जाता है. उनकी नेक आदतों, बुर्दबारी (सहनशीलता), इनकिसारी (आधीनता) प्रेम, शांत चित्त, मीठी बोली और भिन्न-भिन्न आदतों को देखकर उसके दिल में उनसे प्रेम और श्रद्धा पैदा होती है. उस भावना की सहायता से धीरे-धीरे अपनी बुरी आदतों को छोड़ता जाता है और अच्छी आदतों को अपनाता जाता है और कुछ समय में कुछ का कुछ हो जाता है. तातपर्य यह है कि बुरी आदतों को छोड़ना और अच्छी आदतों को ग्रहण करने की भावना होना ही ' तलब' कहलाता है. क्या यही तलब आपको मालिक के चरणों में है ? अगर है तो फ़िक्र न करो. तलब को खूब बढ़ने दो, वह अपना काम किये बिना न रहेगी.

तलब है, दिल कुरेदता रहता है, ख्वाहिश तरक़्क़ी पर है उनकी न तलाश पूरी होती है, न मुराद (मनोवांछना) पूरी होती है, न दिल को इत्मीनान (तसल्ली) होता है :

कबीर साहब कहते हैं -

बिरहन दियो संदेसरा , सुनो हमारी पीव

जल बिन मछली क्यों जिए, पानी में का जीव .

(२) इश्क़ (उपासना)

तलब जब पूरी होकर इस कमाल (पूर्णता) को पहुंचती है वही इश्क़ की सूरत में ज़ाहिर होती है. इंसान के

छोटे-छोटे काम बन कर बड़े काम बन जाते हैं. मामूली और छोटे ख़्यालात सबको मिलाकर ज़बरदस्त ख्याल बना देती है. इसी तरह से बोलने और तक़रीर (व्याख्यान) करने की आदत आदमी को खुश-तक़रीर (मधुर

वक्ता) बना देती है. रोज़ रोज़ की आदत बड़ी आदत में बदल जाती है. इसी से इंसान की मौजूदा रविश (रहनी) का पता चलता है. इसी तरह तलब और उसकी कुरेद उसके दिल को इश्क़, प्रेम और मुहब्बत का घर बना देती है और वह सच्चा भक्त, सच्चा प्रेमी व सच्चा सेवक हो जाता है. जो कुछ है वह आदत है. आदत ही गिरा देती है और यही आदत उठा देती है. इश्क़ जब दिल में आ गया फिर मुमकिन नहीं कि इंसान किसी को दुःख दे सके या भला बुरा कह सके.

अब सोचने की बात है, ईश्वर ही प्रेम और मुहब्बत है इसको मामूली दिमाग़ वाला भी जान सकता है. जब जो आदमी ईश्वर को दिल देगा कैसे हो सकता है कि उसमें मुहब्बत के जज़्बात (भावनायें) पैदा न हों ? जो दिल में रहता है वही बाहर असर दिखाता है. दिल के ख्याल ही हमारे रोज़ाना बर्ताव में अपने ज़ाहिर होने के अजीबोग़रीब (अद्‌भुत) नज़्ज़ारे (दृश्य) रोज़-रोज़ दिखाया करते हैं. अब इस मौक़े पर सोचना चाहिए कि ईश्वर के साथ मिलने का तो हम इरादा रखते हैं मगर ईश्वर की मखलूक (सृष्टि) के साथ हमारा सलूक (व्यवहार) क्या होता है ? इस जगह हमारा प्रेम कैसे- कैसे रंगोरूप भरा करता है. क्या इस पर कभी किसी ने ग़ौर किया है.? अगर ग़ौर नहीं किया है तो आज हमारे साथ थोड़ी देर के लिए हमारे हमख्याल (विचार मिलाकर) हमज़बान (समवाणी) होकर, अगर ज़्यादा नहीं तो थोड़ा ही ग़ौर करो. उस प्रेम की मुख़तलिफ़ (विभिन्न) सूरतें नज़र आने लगेंगी जिनको देखकर बाग़ बाग़ (खुश) हो जाओगे. प्रेम की चाल इकरुख़ी (एकांगी) होती है मगर उसमें इखतलाफ (विपरीत भाव) भी है वह महदूद (सीमित) होता हुआ लामहदूद (असीम) बनने का भी मुश्ताक़ (इच्छुक) है.

कहता नहीं मगर अमल (कर्म) से अपनी हालत ज़ाहिर करता है. वह ऊपर भी है और नीचे भी. वह दरम्यान (मध्य) में भी है और चारों तरफ भी.

जो लोग हमसे छोटे हैं उनसे प्रेम का बर्ताव, दया, नेकी, क्षमा वग़ैरा कहलाता है. हम भूखो को खाना प्यासों को पानी देते हैं. उनकी तक़लीफ़ों को देखकर रो देते हैं क्योकि हमारे अन्दर यह ख्याल समा गया है कि ईश्वर नेक है, रहमदिल है, सखी (उदार) और करीम (कृपालु) है. अगर हम उसकी याद करते हैं या उसके नाम

की माला फेरते हैं, अगर हम ख़्याली तौर पर हमनशीं (साथ बैठना, ध्यान करना) होते हैं तो याद रहे कि सुहबत (संग) कभी बेअसर नहीं होती. अगर हम इन तारीफ़ों से ख़ाली हैं तो समझ लो हमारी भक्ति, प्रेम अभी तक झूंठे हैं और संसारी तलब (इच्छा) रखते हैं और इसमें सच्चाई नहीं है. राजा के दरबारियों को यूं ही आप से आप इज़्ज़त मिल जाती है.

आग के पास गर्मी और पानी के पास ठण्डक मिलती है, फिर कैसे मुमकिन है कि हम ईश्वर से उल्फ़त (प्रेम) का दम भरें और उसके जौहर (गुण) हममें न आवें. मान लिया जाय कि अभी हम ख़्याली मरहलों में हैं, सिर्फ ख़्याल करते हैं और अपने ख़्याल को पका रहे हैं. बहुत दुरुस्त , मगर ख़्याल, तसब्बुर, वहम, यह ही बेअसर नहीं रहते, कुछ न कुछ इनका भी तो असर रहना चाहिए.

जैसा ख्याल है वैसा ही कर्म है और वैसा ही हाल है. यह है प्रेम की सूरत छोटों के साथ.

जो हमारी बराबर की हालत और इज़्ज़त वाले हैं उनके साथ व्यवहारिक प्रेम दोस्ती, आशनाई. मित्रता वग़ैरा का होता है. क्योकि ईश्वर हमारा सच्चा दोस्त है. वही दोस्ती बराबर वालों के साथ बरतते हैं. बड़ों के साथ प्रेम का बरतना, ताज़ीम, इज़्ज़त, प्रणाम, नमस्कार और आदाब कहलाता है.

हम जानते हैं कि ईश्वर बड़ा है, क़ाबिल ताज़ीम, क़ाबिल इज़्ज़त व क़ाबिल पूजा के है. इसलिए जब उसका प्रेम हम पर असर कर जाता है, हम जिसको किसी माने में बड़ा बुज़ुर्ग समझते हैं उनके साथ अदब से उठते बैठते हैं और उनके आदाब व मरातिब (उच्च श्रेणी) का लिहाज़ रखते हैं.

हमको न किसी से नफ़रत है, न हसद (ईर्ष्या) न बुग्ज़ (द्वेष), न अदावत (शत्रुता). सबके साथ हम उसी प्रेम को अलग अलग सूरतों में बरतते हैं. इसके अलावा हमारे चारों तरफ़ है क्या ? हवा, आसमान, पेड़, पानी, हैवान और बहुत से सामान हैं . इनके साथ हम क्या करते हैं ? हमको ख्याल पड़ता है कि हम हवा को न बिगाड़ें, बवा (बीमारी) फैलेगी, पानी को गंदा न करें नहीं तो बीमारियां फैलेंगी. हम पेड़ों को पानी दें, हैवानों (पशुओं) के साथ मुहब्बत से पेश आयें, क्योकि इन ख़्यालात में हमको बेगरज़ाना ख़िदमत (निस्वार्थ सेवा) का मौका मिलेगा.

आदमी आदमी के साथ मुमकिन है किसी गरज़ से सलूक करे मगर यहां अगर ग़ौर से देखा जाय तो आला दर्ज़े की निष्काम सेवा का खयाल रहता है. हम ऐसा करने पर क्यों आमादा (उतारू) होते हैं. क्योकि हमको ख्याल है और इल्म भी कि ईश्वर का सब काम बेगरज़ाना और निष्काम होता है और हम भी वैसा करने

को मज़बूर होते हैं और उसी उसूल (नियम) को मद्देनज़र (दृष्टि में) रखते हुए हम सब तरफ से साफ़ सुथरे रहते हैं और अपने को ज़ब्त (नियंत्रण या अनुशासन में) रखते हैं कि हमारी ज़ात (व्यक्तित्व) से किसी को नुकसान न पहुंचे.

दुनियां में प्रेम सबसे ज़्यादा खूबसूरत चीज़ है तो सच्चा प्रेमी उससे कम खूबसूरत नहीं हो सकता. प्रेमी इंसान, इंसान को कौन कहे , हैवानों के साथ भी हंसकर बोलते और दिली इत्मीनान की निगाह से देखते हैं.

प्रेमी प्रेम की दौलत पाकर खुश हो जाते हैं और इसी ख़ुशी की वजह से बेख़ौफ़ (निडर) और बेग़म (निश्चिन्त) बन जाते हैं. किसी को आज़ार (यंन्त्रणा) नहीं देते और न किसी का मन, वचन, कर्म से दिल दुखाते हैं. परिन्दे (पक्षी) उनके सर पर मंडराया करते हैं. शेर उनके पाँव से माथा रगड़ते हैं. न प्रेमी किसी को सताते हैं न कोई प्रेमी को सताता है क्योंकि सताए जाने का ख़याल तक की यहां गुंजायश नहीं है. जो जी में आवे करो, करते रहो, मगर किसी का दिल मत दुखाओ. ऐसा करने से हमारी सारी बुराइयाँ आप से जाती रहेंगी. क्योंकि प्रेम दिल को जला देने (चमकाने) वाली, दिमाग़ को रोशन (प्रकाशित) करने वाली और जिस्म को पाक (साफ़) करने वाली चीज़ है. फ़ारसी के एक कवि मौलाना रूम फरमाते हैं

"अगर एक प्रेम ही दिल में बस जाय तो कुछ करने धरने की ज़रूरत नहीं,

कहाँ का जप, कहाँ का तप, कहाँ का अमल कहाँ का शगल, सब फ़िज़ूल

बेफायदा. प्रेम सारे मर्ज़ों की दवा है. मर्ज़ चाहे जिस्मानी हो, दिमाग़ी, दिली

या रूहानी, प्रेम सबको मेट देता है. प्रेम आया नहीं कि सारी बुराइयों की

जड़ कटी नहीं."

प्रेमी की आँख प्रियतम के सिवाय किसी को नहीं देखती, न शिकवा है न शिकायत. यह राज़ी-व-रज़ा (ईश्वर की मर्ज़ी) में खुश रहने का तरीक़ा है. यही ईश्वर अर्पण और ईश्वर पारायण का मार्ग है. दुनियाँदार

रोते व चिल्लाते व मालिक को भला बुरा कहते रहते हैं क्योंकि उनकी निगाह मालिक की तरफ़ नहीं है, अपने मतलब की तरफ़ है. खुदगर्ज़ी (स्वार्थ) खुदमतलबी का ख़याल है. ख़ुदी सारे झगड़ों की माँ है.

कोई इन नादानों से पूछे कि ईश्वर अक़्लमंद है या नहीं ? अगर वह अक़्लमंद है तो दुनियाँ में बदसूरती

कैसी ? अगर वह मुक़्क़मिल (पूर्ण) है तो उसकी कारीगरी में ऐब (दोष) कैसा, और कामों में नुक्स व कमी

कैसी ? कहाँ तक कहा जाय ? उसका दीदार (दर्शन) सिर्फ़ सच्चे आशिक़ व प्रेमियों को मिलता है.

अब समझ में आ गया होगा कि इश्क़ कैसे नापाक (अपवित्र) दिल को पाक (पवित्र) करता है व संगदिल (पाषाण ह्रदय) को मोम बना देता है. इश्क़ एक आग है जो दिल की अंगीठी में जलती है और दिल की सब बुराइयों को जलाकर खाक़ कर देती है और माशूक़ (प्रियतम) के सिवाय कुछ भी नहीं रहने देती.)

प्रेमी रोते हैं. माशूक़ की चाह में जान खोते हैं क्योंकि यह जिस्म फ़ानी(नाशवान) है, सिर्फ़ माशूक़ ही बाक़ी है. कोई ऐसों को चाहे जिनूनी कहे या दीवाना बताये मगर यह सच्चे अक़्लमंद, सच्चे जौहर-शिनाश

(परखने वाले) होते हैं. इनकी जो मुराद (मंशा, लक्ष्य) होती है उसके सिवाय किसी तरफ़ निगाह नहीं करते और अगर देखते भी हैं तो इस तरह से :-

सिया राम मय सब जग जानी

करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी

शायद कोई कहे कि इश्क़ ख़्याल है. हाँ, बेशक ख़्याल है. मगर यह भी तो सोचना समझना चाहिए कि ख़्याल चीज़ क्या है ?

उपनिषद में एक जगह लिखा है कि इंसान सिर्फ़ ख़्याल से पैदा किया गया है. इसलिए वह जो कुछ सोचता है वही हो जाता है. इन शब्दों में " पैदा किया गया " पर ग़ौर करो. क्या अजब असलियत समझ में आ जाय.

दिल को आग की भट्टी बनाओ, उसमें ख़्याल के सोने को रात-दिन खूब तपाओ, मैल जल जायेगा और कुन्दन चमकने लगेगा, यह तो समझ में आता है. बाक़ी अल्लाह अल्लाह ख़ैर सल्ला.

अब सबाल यह है कि इश्क़ पैदा कैसे हो ? **जबाब** (१)- तलब (ख्वाहिश या इच्छा) को बढ़ाते चलो, उससे रोज़ रोज़ शौक़ बढ़ता जाय. जबाब (२) - गुरु के पास जाओ और उनकी ज़ात (व्यक्तित्व) के साथ यानी मतलब को दूर रखकर सच्चा प्रेम करना सीखो. वे दुनियाँ में प्रेम मुजस्सिम (साक्षात् प्रेम मूर्ति) इश्क़ मुजस्सिम और हक़ीक़त (सत्य) मुजस्सिम हैं. यह हो सकता है कि किसी को किसी अवतार का इष्ट हो. किसी गुज़रे हुए फ़क़ीर के साथ मुहब्बत हो. अगर इन बातों का ख़्याल है तो हम किसी के साथ उलझने को तैयार नहीं हैं.

जो जिसका इश्क़ रखे वह उसको कर देखे. मगर इतना सोच ले कि वैद्य धन्वन्तरि मर गए, अब दवा कौन देगा ? पुराने सोते सूख गए, अब पानी कहाँ से मिलेगा ?

इश्क़ किसी का भी हो, अच्छा है. औरत का इश्क़, माता -पिता का इश्क़, भाई का इश्क़, सब अपनी अपनी जगह मुबारिक हैं. मगर सच्चे मुबारिक वे हैं जो इश्क़ के जिन्दा सरचश्मे (श्रोत) पर पहुंच कर शादाब (ओत प्रोत) और सैराब होकर तस्कीन (शांति) पाते हैं. यानी सतगुरु की सेवा में जाकर सत्संग करके उसके प्रेम से मालामाल होते हैं या सच्चे पिता परमात्मा में अपने आप को लय करके उसके प्रेम में ओत -प्रोत होते हैं. सच्चा प्रेम केवल दो ही जगह पर मिलता है - या तो परमपिता परमात्मा के चरणों में या उन भक्तों में जो सच्चे दिल से उसके प्रेमी हैं और जिनको ' गुरु ' कहते हैं. लाख मूरत के सामने नियाज़ (भेंट) चढ़ाओ मगर न वह बोलेगी न सच्चे माने में किसी को इश्क़ की वेदी पर तन मन भेंट करने का मौक़ा मिलेगा.

गुरु चमड़ा, हड्डी, गोश्त का नाम नहीं है. वह आईडियल है, आदर्श है. पहले ज़ाहिर सूरत पर निसार (न्योछावर) होना सीखो फिर आप से आप भीतर की तरफ़ चले जाओगे. भीतर (बातिन) अन्दर है बाहर नहीं.

हम न गुरु हैं, न गुरु बनने का दावा है. मगर मालिक के हुक्म से सच्चाई की तरफ़ जाने और चलने की प्रेरणा करते हैं. यही गुरु का हुक़्म है. हम ही सिर्फ़ ऐसा नहीं करते परन्तु पहले से भी सभी ऐसा करते आये हैं. वेद, उपनिषद, गीता में भी यह नज़र आएगा :-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु , गुरुदेवो महेश्वरः

गुरु साक्षात परब्रह्म , तस्मै श्री गुरुवे नमः

अगर किसी को यह मन्ज़ूर न हो, न सही, मगर प्रेम से ख़ाली नहीं रहना चाहिए. किसी के प्रेम को दिल में जगह दो, वह आप किसी वक्त रास्ता खोज निकालेगा. हाँ, ज़रा देर लगेगी, मगर क्या हर्ज़ है - देर आयद दुरुस्त आयद (जो काम देर में होता है वह दुरुस्त होता है). और नहीं तो तलब को ही तरक़्क़ी देते चलो.

एक जिज्ञासु किसी फ़क़ीर के पास गया और कहा, " मुझे ख़ुदा के दर्शन करा दो." फ़क़ीर उसके जज़्बातों ((भावनाओं) को जान गया और कहा सब्र से काम लो. मगर ' उतावला सो बाबला ' नादान को सब्र कहाँ ? बोला, " नहीं बाबा, जल्दी होना चाहिए " फ़क़ीर ने उसकी गर्दन पकड़ कर अपनी धूनी में डालनी चाही. धुआं लगा, घबराया, कश्मकश करने लगा. फ़क़ीर ने छोड़ दिया, तब उसकी जान में जान आयी. तब उसने पूछा कि "आग के पास तुझे किस बात की ख्वाहिश हुई. " उसने कहा कि " दम घुटता था, हवा चाहता था और आग से बचने की तलब थी." साधु ने कहा, " बेटे ! यह संसार आग का घर है, इससे जब तक किसी किस्म की नफ़रत न हो और मालिक के चरणों में जाने की ऐसी ही ख्वाहिश न हो जैसी तुझे आग से बचने की और खुली हवा में सांस

लेने की हुई थी, तब तक तू अधिकारी नहीं बन सकता. जा, तलब को तेज़ करता रह. फिर कभी उसका भी वक्त आएगा. "

मतलब यह है कि प्रेमी इस तरह के विरक्त और दुनियाँ के झगड़ों से आज़ाद होकर तलब माशूक़ की राह में आते हैं. बाक़ी सब कूड़ा-करकट है जो संसार की आग में जलते रहते हैं.

बहुत कह चुके ज़्यादा लिखने में तबालत होगी. इसलिए इत्तफा (बस) की जाती है.

(३) मार्फत (ज्ञान) (4) तौहीद

शरीयत, तरीक़त, मार्फ़त, कर्म, उपासना, ज्ञान, जिस्म, दिल, रूह - इन शब्दों को सोचने के लिए बहुत सामान भरा पड़ा है अगर उनकी तरफ कोई तबज्जह करे. इसी तसलीम (त्रिपुटी) के दूसरे नाम तलब, इश्क़, और मारफ़त कहलाते हैं. इससे पहले शायद ही किसी दूसरे ने इन शब्दों से इनको याद किया हो. हमने किसी चीज़ की ज़रूरत समझी, उसकी लगन लग गयी और उसकी पहिचान हो गयी. पहला दर्ज़ा ख़्वाहिश, बीच का दर्जा लगन और पहिचान तीसरा दर्ज़ा (मंज़िल) है. ख़्वाहिश एक पेड़ की जड़ है. लगन उस पेड़ का तना है और पहिचान उसका फूल है. दूसरी तरह से यूं समझो - भूख लगी, बढ़ती गयी, भूख की पहिचान हो गयी. यह तीनों दर्ज़े त्रिपुटी के हैं. इससे शरीयत, तरीक़त व मारफ़त या कर्म उपासना और ज्ञान से शुरू में ही काम पड़ता है. यह भूल कर भी नहीं समझना चाहिए कि ज्ञान ही सब कुछ चीज़ है. नहीं अभी बहुत पापड़ बेलने पड़े हैं. ज्यों, ज्यों तरक़्क़ी होती जाएगी त्यों त्यों इनकी समझ आती जाएगी. अभी तो ग़रूर से या नाज़ से लोग कहते रहते हैं कि - " हम ज्ञान मार्ग पर चलते हैं. हमको इल्म इरफ़ान (ब्रह्म विद्या) से ताल्लुक़ है जो छोटी की हालत है."

मगर दोस्तों चोटी यह नहीं है, समझते चलो. असली मंज़िल अभी कोसों दूर है. तलब कर्म है, अमल व शगल जप व तप, कर्म करना ज़रूरी है. कर्म करते हुए, कर्म से ताल्लुक़ पैदा करते हुए उसका प्यार आवेगा. यही इश्क़ है, यही उपासना है, यही भक्ति है, यही प्रेम है और जब कर्म की माहियत (तत्व) समझ में आने लगी वही ज्ञान हुआ, वही इरफ़ान हुआ, वही इल्म जात हुआ.

बात एक है उसकी सूरतें तीन हैं और यह कुदरती है. ज़िन्दगी में इससे काम लेना पड़ता है. बच्चा पहले हाथ पाँव मारता है. तनोतोष (शरीर) से लहीम व शमीम हो जाता है फिर मन से सोचता है. इसके बाद अक़्ल से काम लेता है. तीनों हालतों में उसकी नशिश्त (बैठक) तीन अलग अलग तबक़ों (श्रेणी) में हुआ करती है.

तवज्जह (ध्यान) की पहली बैठक जिस्म (शरीर) है, दूसरी दिल और तीसरी दिमाग़ है. जिस्म की तरबियत (गढ़त) कर्म है. दिल की तरबियत (गढ़त) उपासना है और अक्ल की तरबियत ज्ञान है. जवान को शादी की फ़िक्र हुई. ये शरीयत है. बीबी का ख्याल पैदा हुआ, यह तरीक़त है. बीबी की समझ आयी , यह मारफ़त है. ऐसा भी होता है कि कोई किसी में अटक रहता है और कोई किसी में. जिस्म में अटकने वाला पहलवान, दिल में अटकने वाला नेक जज़बात (भावनाओं) का इंसान और अक्ल में अटकने वाला ज्ञानी कहलाता है. तीनों की तीन हैसियतें हैं और अपनी अपनी जगह पर ज़रूरी और लाज़िम हैं. मगर मुबारिक (धन्य) वह हैं जो तीनों को ही धीरे-धीरे बढ़ाकर अपनी तरक़्क़ी कर जाता है. वही वली, नवी अवतार का दर्ज़ा पायेगा. आज नहीं कल ही सही, तरक़्क़ी के दर्ज़ों के मरहलों

(समस्याओं) का तै करने वाला ऊपर की तरफ़ चढ़ता जायेगा. ऐसे आदमी को कोई ताक़त रोक नहीं सकती, ऐसों की रुकावट दुनियां में मुमकिन नहीं है.

अगर तलब और इश्क़ की मंज़िलें तय हो गयीं तो इर्फ़ान (ज्ञान) के मुक़ाम (घाट) पर आना चाहिए. यह हालत तीनों में सबसे ऊंची है. यहीं अपने मुराद (लक्ष्य) की समझ आवेगी और ज़ात (व्यक्तित्व) का इल्म हासिल (प्राप्त) होगा. इसी की बदौलत ख़ुदा की समझ आवेगी, जो असल में तुम्हारी ही ज़ात है. ज़ात का इल्म बेहतरीन (सर्वोच्च) इल्म है, बेहतरीन हिकमत और बेहतरीन साइंस है.

सारे इल्मों की जान यह है कि " जिससे यह समझे कि मैं कौन हूँ". हर चीज़ की क़ीमत तू जनता है मगर अपनी क़ीमत तू नहीं जनता. यह गधापन ही हो सकता है कि कोई यह सवाल कर बैठे कि बिला (बिना) विसाल (मिलान) बिला दीदार (देखे) यह इल्म कैसे हो सकता है? सवाल बेशक़ मज़ेदार है. मगर देखो भाई, पहले अपनी बीबी को देख लेते हो और तब मज़े उड़ाते हो या इससे पहले? कहो सच है या झूंट.? यह तो ज़रूर ही मानोगे, माने बग़ैर चारा नहीं है.

आखिर कोई, जिसका नाम तो है नैनसुख मगर है " आंख के अंधे" कह उठे, अंधे को अपनी औरत की सूरत नज़र नहीं आयी और भोग विलास कर लेता है. खूब, अक्ल के नाखून लो, इल्म एक तरफ़ का तो है नहीं, छूना, सूंघना, देखना, चखना, सुनना, सोचना, जानना , यह सब ही इल्म हैं. किस अंधे ने दुल्हन को छुए वगैर हमआग़ोशी (आलिंगन) के मज़े लुटे हैं.? अब भी समझे या नहीं ? अगर नहीं समझे तो अभी और जहालत (अज्ञानता) की हवा खाओ. मिसाल पहले आ चुकी है मगर फिर भी सुनकर समझो.

पत्थर बनाने वाले को तलब (ख्वाहिश) हुई कि मूर्ती बनावे. उसने हाथ में हथोड़ा लिया और पत्थर को गढ़ने लगा. उसमें शक्ल बनता ही. खतो-खाल (प्रतिमा) निकालता है और उसको ख़ूबसूरत बनाता है. यह ख़ूबसूरती कहाँ से आयी? उसी के अपने दिल से निकली और अन्दर छिपी हुई है. यही इल्म, यही इरफ़ान (ज्ञान) है. ज्ञान के सींग पूँछ नहीं होती. अभी उसकी गढ़ी हुई मूर्ति पूरी भी नहीं हुई मगर ज्ञान पहले से ही हो गया. मूर्ति अधूरी है मगर समझ बूझ मौज़ूद है. कहो सच या झूंठ ?

ज्ञान की यह थोड़ी सी मगर साफ़ तशरीह (व्याख्या) है. इसको किताबों में तलाश करना फ़िज़ूल है. अपने दिल में तलाश करना चाहिए जिसमें तमाम किताबें भरी पड़ी हैं और इल्मों का खज़ाना है.

किताबों में धरा क्या है, बहुत लिख लिख कर धो डालीं

हमारे दिल   पै   नक़्शेकल, हज़र है तेरा   फ़रमाना

न देखा   वह कहीं जलवा, जो देखा   ख़ानए-दिल

बहुत मसजिद में सिर मारा,   बहुत सा ढूंढा बुतखाना

इसी तरह जब तलब (इच्छा) और इश्क़ (प्रेम) जोश पर आते हैं इरफ़ान (ज्ञान) का हासिल होना लाज़िमी (आवश्यक) और ज़रूरी हो जाता है. पेड़ लगाया उसमें फूल आये, फल का आना ज़रूरी और क़ुदरती है अगर पेड़ को खस्सी नहीं किया गया.

यह ज्ञान है, यही इरफ़ान है. वह तुममे है, तुम से है और वह खुद तुम हो बशर्ते इसकी समझ तुम में आ गयी है. नाक को सीधी तरह से पकड़ो, चक्कर देकर पकड़ने से क्या फ़ायदा?

इरफ़ान (ज्ञान) हक़ीक़त (वास्तव) में दिल के पर्दों को चाक (फाड़ना) करते हुए उनके अन्दर अपनी ही असलियत को देखना है और कुछ नहीं.

जाग्रत और स्वप्न से ऊपर चढ़कर सुषुप्ति पर ग़ालिब आना, ज्ञान है और सत, रज, तम को दबा कर बैठना ज्ञान है. जबरत (जाग्रत) मलकूत और नासूत के तबकात को तै कर जाना इरफ़ान है. साइन्स अच्छा, इल्म अच्छा, अक्ल अच्छी - सभी अच्छे हैं मगर सबसे अच्छा यह ज्ञान है और ज्ञान से मुराद सिर्फ़ इतनी है कि अपने आपको पहिचानना, अपनी माहियात से वाक़िफ़ होना और अपना ज़ात ख़ास का इल्म पा लेना.

ज्ञान की मंज़िल पर वे पहुंचते हैं जिन्होंने जिस्मी, दिली और अक़्ली तरक़्क़ी कर ली है. और तो नाहक भ्रम में फंसा देते हैं और भ्रम इंसान को मार देता है.

यह ज्ञान दूर की सूझ सुझाता है. मगर इंसान लफ़्ज़ों (शब्दों) के धंधों में न फंसे और सिर्फ़ नफ़्स मतलब पर निगाह रखे वर्ना वह ज्ञानी नहीं, वाचक ज्ञानी कहा जा सकता है. दुनियां में ज्ञानी कम होते हैं. हज़ारों मरदों में से कोई एक ही सखी का लाल ऐसा निकलता है. ज्ञान अपना आप बदला है.

इल्म पढ़कर नौकरी की जाती है, क्यों ? रुपया कमाने को. इसमें रुपया नहीं मिलता फिर इसमें क्या मिलता है ? ख़ुशी, दिल की ख़ुशी, इल्म की ख़ुशी, अपनी हस्ती की ख़ुशी और अपनी जात की ख़ुशी. यह क्या कम है नहीं यह चीज़ सबसे बढ़कर है. यह ज्ञान आत्मा के करीब (निकट) पहुँचाता है. सिर्फ़ आत्मा ही गैरमुतहर्रिक (हरकत न करने वाली) और अचल है. सब इसमें गुंथे हुए हैं, यह किसी में गुंथा हुआ नहीं है. जिस्म इसका, दिल इसका, मगर यह किसी का नहीं. आज़ाद-मुतलक़ (निर्लेप) बे क़ैदोबंद (जो किसी की क़ैद में न हो) यह आत्मा बे-ताल्लुक़, बे-लाग लिपट, बे क़ैदोबंद का है. असल में यही सब कुछ है और कुछ भी नहीं.

इस दफ़ा एक क़िस्सा भगवान कृष्ण का का याद आ गया. क़िस्सा मज़ेदार है.

एक दफ़ा रुक्मिणी जी ने कृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभु ! अगर आज्ञा हो तो महर्षि दूर्वासा जी के दर्शन कर आऊं जो यमुना के उस पार ठहरे हुए हैं. कृष्ण भगवान ने आज्ञा दे दी. किन्तु इत्तफ़ाक़ से (संयोगवश), किश्ती न थी. रुक्मिणी जी ने कृष्ण भगवान से प्रार्थना की कि है प्रभु! किश्ती नहीं है, किस तरह यमुना पार जाऊं. कृष्ण भगवान बोले :-

" यमुना से जाकर कहना कि अगर कृष्ण ने कभी मेरे साथ भोग नहीं किया है तो तू मुझको रास्ता दे दे." रुक्मिणी जी को ताज्जुब हुआ, दिल में कहने लगी, " इनका और मेरा हमेशा ही साथ रहा है, और यह कहते हैं कि मैने कभी भोग नहीं किया है." मगर वह चल खड़ी हुईं. यमुना को वह सन्देश सुना दिया. उसने रास्ता दे दिया. इधर उधर पानी और बीच में खुश्की. वह दुर्वासा के पास पहुंची. पकवान का टोकरा रख दिया. दुर्वासा ने खूब खाया और दुआ दी. वह चलते समय कहने लगा - " यमुना चढ़ी हुई है, पार कैसे उतरूंगी.? दुर्वासा ने पुछा-" आईं कैसे ?" उसने कृष्ण का बताया हुआ मंत्र सुनाया. दुर्वासा हँसे, और कहा, " अच्छा, यमुना से कह दो -अगर दुर्वासा ने तेरा पकवान नहीं खाया हो तो रास्ता दे दे." वह और भी हैरान हुई कि अभी इस मसख़रे ने सारा पकवान चट कर दिया और कहता है.नहीं खाया. चल खड़ी हुई और यमुना ने उसी तरह रास्ता दे दिया. उसने कृष्ण के पास आकर पूछा, इसमें क्या भेद है ? उन्होंने जबाब दिया, _ " कृष्ण और दुर्वासा दोनों ही आत्मा हैं, गोपियाँ इन्द्रियां हैं. कहने को सारे काम आत्मा के मंसूब किये जाते हैं, मगर वह सबसे अलग थलग रहती है"

यह आत्मा की असलियत है. सब कुछ करती है और कुछ नहीं. इस आत्मा का जलाल (प्रकाश) दुनियां में नुमांया (चमकता) होता है और तलब और इश्क़ के बाद इसकी समझ आती है.

तलब हो गयी, इश्क़ हो गया, यक़ीन हो गया. तलाश और तलाश की सरगर्मी और दिली ख्वाहिश की पहिचान किस क़दर हासिल हुई. अब उसे मिलकर एक रहने की हविस है. हिज्र (विरह) का ज़माना गुज़र चुका. विसाल (मिलन) की बारी आनी चाहिए. दुनियाँ इज़तमाय ज़िददेन (द्वन्द) की हालत है. एक का होना दूसरे का सबूत है. तुम इस वास्ते हो क्योकि हम भी हैं. हम इस वास्ते हैं क्योकि तुम मौजूद हो. अगर इनमें से एक भी ग़ायब हो जाय तो फिर ' हम ' और 'तुम' दोनों बेमानी (निरर्थक) मादूम (नाश) बेमसरफ़ हो जाएँ. इसलिए इस द्वन्द की रचना में एक के साथ ही हमेशा लगे हुए हैं. भूख व आसूदगी, रात व दिन, रंज व ख़ुशी, बंधन व मोक्ष, ज़ात व सिफ़ात (गुण).

अभी तक हम दो करते आये हैं. दो के नाम ज़िक्र करते आये हैं. अब एक मिलेगा या नहीं. अब तक नादान बन कर अपनी नादानी दिखाते आये. दानाई भी आएगी या नहीं ? दो में झगड़े रगड़े हैं, एक में आराम है. जब एक रहेगा तब किससे कहेगा और क्या कहेगा ? किसकी सुनेगा और क्या सुनेगा ? किसको जानेगा और क्या जानेगा ? वहां वो नहीं है कि एक दूसरे से बोल सकें व एक दूसरे के रंज में शामिल हो सकें. इसलिए एक की ख्वाहिश थी , वह मिल गया, अब क्या रहा ? पहिचानने के साथ ही तौहीद (एकता) की परिक्रमा शुरू हो गयी. एक है, एक की पहिचान होने पर तौहीद (एकता) के दरवाज़े पर परिक्रमा शुरू हो गयी. शमा (चिराग़) पर परवाना (पतंगा) गिरा, जलकर उसी में खाक़ (भस्म) हो गया. बूँद समुन्द्र में गिरी, अपनी हस्ती खो बैठी.

यह तौहीद है मगर इसकी समझ लाखों में से किसी एक को आती होगी. तसलीम परस्त (तीन को पूजने वाला) कहता है -" ख़ुदा है, प्रकृति है, आत्मा है और ये तीनों अनादि हैं." दो को मानने वाला कहता है, " सारी आत्मा असल व

नसल के लिहाज़ से एक है. ख़ुदा को मानने की ज़रूरत नहीं है." एक को मानने वाला कहता है, " तुम दोनों की बातें बेमानी हैं. यह क्यों नहीं कहते कि सिर्फ़ ख़ुदा ही है और कुछ नहीं,

' हमाओस्त व हमाअज़ोस्त ' मानो, वही सब कुछ है और उसी से सब कुछ है.' देखा, तीन मुंह और तीन बातें. इनमें अपनी अपनी जगह सब सच्चे और अपनी जगह छोड़ने पर झूंठे.आगे देखिये मुवाहिद (एकवादी) लोगों में भी तीन तरह के आदमी हैं :- (१) द्वैताद्वैत जो मौक़े पर द्वैत और मौक़े पर अद्वैत बनता है .

(२) विशिष्टाद्वैत जो एक ज़ाते-वाहिद (एक हस्ती) में दो बातें जड़ व चेतन मानता है.

(३) अद्वैत, जो जड़ व चेतन को फ़र्ज़ी व ख्याली बताता है. सिर्फ़ ज़ात-वाहिद (एक हस्ती) को हक़ (सत्य) समझता है.

इसमें रगड़े झगड़े हुआ करते हैं. क्योंकि यह सब असलियत से दूर हैं. बात बनाना तो सीख गए. दलील व हुज्जत (तर्क वितर्क) हमेशा ज़बान पर रहती है. तौहीद कुछ और है और यह समझे कुछ हैं. अगर यह ख़ालिस वाहिद (एक को मानने वाले) हों तो इनमें झगड़ा होने की क्या ज़रूरत. बहस मुबाहिसा की क्या ज़रूरत थी ? क्योकि तौहीद तक पहुंचते पहुंचते सारे झगड़े ऐसे ग़ायब हो जाते हैं जैसे गधे के सिर से सींग या बाँझ का लड़का.

हम तौहीद किसको कहते हैं ? ' दो को मिलकर एक हो रहना' - इस तरह से कि फिर दुई का ख़्याल तक दिल में न आने पावे. यह असली तौहीद है.

मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जाँ शुदी

ता कस न गोयद बाद्ज़ी, मन दीगरम तो दीगरी

अर्थ -- मैं तू हो गया और तू मैं हो गया. मैं जिस्म बन गया और तू मेरी जान बन गया ताकि अब कोई यह न कह सके कि मैं और तू दो हैं.

खाविंद बीबी के साथ हमआग़ोश हो गया (गले मिल गया). दोनों एक हैं. इस वक्त कोई झगड़ा रगड़ा नहीं. मज़ा ही मज़ा है, खाविंद बीबी से अलग हो गया, एक से दो हो गए. अब झगड़े ही झगड़े हैं . सब मज़ा किरकिरा हो गया. यह रोज़ाना कारोबार में देखा है.

यह मिसाल तौहीद को समझने में कुछ मददगार होती है. मगर यह भी ख़ालिस तौहीद नहीं है और तौहीद कभी ख़ालिस नहीं होती. एक के साथ दो का झमेला लगा ही रहता है. जब तक यह ख़्याल कि हम आशिक़ मुवाहिद (एकवादी) हैं तब तक माशूक़ (प्रियतम) और दो की हस्ती का ख़्याल रखते हुए असलियत से दूर रहेंगे. इसलिए दुनिया के व्यवहार में यह लफ्ज़ महज़ ख़याली और फ़र्ज़ी है, न कोई असलियत है. जब तक मुवाहिद (एक को मानने वाला) ज़ात-वाहिद (एक

पना) में खुद को भुलाकर तौहीद के ख़्याल तक को फ़रामोश (भुला) न कर देगा , तब तक तौहीद (ध्येय) की असली मुराद ज़हन में नहीं बैठ सकती और यही सबब है कि जिनको ज़रा भी अच्छी समझ बूझ है वे तौहीद की डींग नहीं मारते, चुप रहते हैं.

हक़ हक़ है, नाहक़ नाहक़ है. तौहीद में न हक़ है न नाहक़ है. जो तौहीद की बाँग लगाता रहता है वह द्वैतवादी है और जो तौहीद का पूजने वाला है वह बुतपरस्त है. जो इशारा करता है वह ग़ाफ़िल है और जो उसकी बातचीत करता है वह जाहिल है क्योंकि तौहीद उसके लिए है जो मुवहिद है (एक मानने वाला) जमाल (प्रकाश) का पर्दा है. तौहीद बतौर ख़ुद कमाल है जिसको दीद व शुनीद (देखना व सुनना) महज़ वहम और ख़्याल है.

जबाँ बंद कर , लब को खामोश कर

न कुछ मुंह से कह, होश कर होश कर

मगर इसकी समझ कैसे आये? इसको किस तरीक़े से समझना चाहते हो ? हिकमत से या फ़िलसफ़ा से या साइंस से, ताकि समझाने की कोशिश की जाय. मगर यह न कहना कि तुम भी बोल उठे आख़िर. बोलना झगड़ा मोल लेना है. बोले नहीं कि मतलब हाथ से गया नहीं. मगर ख़ैर, जैसा बनेगा वैसा समझायेंगे. अगर समझते हो तो सुभान अल्लाह , तुम हम दोनों खुश. अगर नहीं समझते हो इस्तख़फ़ुरउल्ला, हम भी डूबे और तुम भी डूबे. अगर समझने की ख्वाहिश है तो इन्शाअल्लाह, हम भी ख़ुशनसीब तुम भी ख़ुशनसीब.

सबसे पहले अपनी तरफ़ नज़र करनी चाहिए. अपने जिस्म को देखो, वह छोटी कायनात (दुनिया) है. इसमें कितनी नस नाड़ियां हैं, कितने रग व रेशे, खून व चर्बी, कितने गोश्त व पोस्त (खाल) मौजूद हैं. कसरत

(बहुतायत) है, इससे कौन इन्कार कर सकता है. मगर सब आपस में गुंथे हुए हैं और यह गूंथना तौहीद और एकपना कहलाता है. और आगे चलो, एड़ी से चोटी तक तुम सिर्फ़ एक हो, इसमें कोई दूसरा नहीं है. गोश्त पोस्त वग़ैरा सब तुम में है और वही तुम हो. देखो एक है या नहीं. यही तौहीद है.

" हमाओस्त व हमाअज़ोस्त ". -- मिसाल (उदाहरण) समुन्द्र में पानी, मोती, मूंगा, लहर, कौड़ी, व शंख सभी कुछ हैं. इन्हीं की एकजा (सम्मिलित) हैसियत का नाम समुन्द्र है. किसी एक को या सबको अलग अलग कर लो तब समुन्द्र कहाँ रहा ? एक में बहुत और बहुत में एक का तमाशा था. वह दूर हो गया. अब समुन्द्र नहीं रहा. समुन्द्र वहदत (एक) है और बाक़ी सब चीज़ कसरत (अनेक) हैऔर भी इसी तरह की मिसालें दीं जा सकती हैं.

अब साइंस क्या कहती है, यह भी सुन लो. चीज़ एक है. कीमिया के अम्ल से उसमें हज़ारों सूरतें पैदा हो गयीं. पानी में हरकत और हिलोर पैदा हुई, झाग आ गया. झाग सूखा, मिटटी बन गयी. मिटटी से पेड़, पत्थर, इंसान (मनुष्य) हैवान (पशु) सब बन गए. मिटटी के अजज़ा (अंगों) को हलकर (मिला) दो. अब सिवाय पानी के और क्या रहा ? द्वैतवादी झगड़ालू, तसलीमी (त्रिपुटीबाद) मुफ़सिद (झगड़ा करने वाले) व शरीर (उपद्रवी) हैं मुवाहिद (अद्वैतवादी) अच्छा है.

इससे किसी का झगड़ा नहीं रहता न वह बहस मुबाहिसे में पड़ता है. जो समझ लिया वही सब कुछ है. खुद अपनी ज़िंदगी के रोज़ाना बरतावे को देखो. तुमको अपने से छोटे कमअक्ल आदमियों से नफ़रत (घृणा) थी. तुमने सोचा कि ऐसे आदमियों के साथ रहना सहना पड़ेगा. अपने हालात को उनके हालात से साथ मिला दिया. निगाह ऊंची होते ही नफ़रत का फ़र्क कम होने लगा. तुम उन जैसे और वे तुम जैसे बनने लगे. अब न वह नफ़रत है न कदूरत (दुराव). तुम उनकी कमज़ोरियों को दया और क्षमा की निगाह से देखते हो. वे तुमको प्यार करते हैं, तुम्हारी इज़्ज़त करते हैं. अब तुम भी खुश, वे भी खुश. क्योकि ख़ुशी वहदत व एकपने में है.) नाजिन्सीयत(गैरपना) झगड़े की जड़ है. हमजिन्सीयत (जातिवाचकता) इतमीनान क़ल्ब (ह्रदय) की हालत है और यही तौहीद है. इसी की सबको ख्वाहिश होती है. तौहीद का मसला समझा दिया अब इस थियेटर का ड्रोपसीन होता है. फिर वही मज़हवी उधेड़बुन की तरफ चलने का ख्याल है क्योकि निगाह का नुक़्ता (दृष्टिकोण) वहीं है जो कभी नज़र से ग़ायब नहीं होता और ग़ायब भी कैसे हो ? रात दिन वही अमल और शग़ल रहता है और उसी के मुताबिक़ ज़ज़्बात (भावनायें) पैदा किये जा रहे हैं. इसलिए अगर्चे मिसाल कई किस्म की दी जाती हैं मगर नज़र उसी कि तरफ़ रहती है.

तौहीद के उस्तादों (गुरुओं) ने इसकी कई किस्में की हैं. तक़सीम (विभाजन) और तरतीब (एकत्रित करना) क़ुदरत (प्रकृति) का खास्सा (स्वभाव) है अगर कोई तौहीद की भी क़िस्में मुकर्रिर (निर्धारित) करता है तो हमें एतराज़ (आपत्ति) क्यों होना चाहिए, जो जैसा है और जिसकी जैसी समझ है वैसा ही कहेगा और करता रहेगा, पर मेरे ख़्याल से तौहीद में इख़्तिलाफ़ात (प्रतिकूल भाव) दिखना बेकार है क्योंकि जब उसकी किस्में हो गयीं तो फिर उसमें तौहीद कहाँ रही.? वह तो भानमती का पिटारा बन गयीं जिनमें सभी चीज़ें अगड़म बगड़म मौज़ूद हैं. ख़ैर, इनकी भी सुनना चाहिए.

मुसलमान सूफ़ियों ने चार किस्में बताई हैं :-

(१) तौहीद (एकपना) शरई (धर्मशास्त्र अनुसार कर्मकाण्ड) यानी खुदा (परमेश्वर) की वहदत (एकपना) का क़ायल होना और उसको अपने से क़दीम (पुराना) समझना और अपने आँख, कान व कलाम (वचन) से आँख, कान व बोलने वाला जानना.

(२) तौहीद तरीक़त (उपासना) - इसकी फिर दो किस्में हैं :

(अ) तौहीद अफ़ाली (कर्म) यानी जुमला मौजूदात को अफॉल - ख़ुदा (ईश्वर का किया हुआ) समझना.

(ब) तौहीद सिफ़ाति (गुण सहित) यानी जुमला मौजूदात सिफ़ात-बारी) (ईश्वर के गुण) ख़्याल करना.

(३) तौहीद ज़ाती यानी सबको ख़ुदा की ज़ात का मानना.

(४) तौहीद हक़ीक़त यानी उसमें अपने आपको बिलकुल महब (लय) कर देना.

हक़ीक़त (वास्तव) में यह मरहले (समस्या) कुछ नहीं. सूफ़ियों की तौहीद की चार किस्में हो गयीं. अब हिन्दुओं की ज़रा तौहीद सुन लो :-

(१) सालोक्य (२) सामीप्य (३) सारूप्य (४) साजुज्य .

इसको लोग मुक्ति के दर्ज़े बतलाते हैं मगर तौहीद भी तो एक तरह की मुक्ति ही है. दो की क़ैद या बन्द से छूटकर एक में आ जाना ही मुक्ति है

तशरीह (व्याख्या) :-

(१) सालोक्य यानी ईश्वर के लोक में दाख़िल होना

(२) सामीप्य यानी ईश्वर के पास पहुंचना

(३) सारूप्य यानी ईश्वर के रूप में दाख़िल होना

(४) सायुज्य यानी ईश्वर के असल ज़ात (निजधाम) में दाख़िल होना.

यह सब मरहले (समस्याएँ) हैं और कुछ नहीं.

अब इरफ़ान (ज्ञान) की उस बात की तरफ़ गौर करना चाहिए जिसमें पत्थर काटने वाले और मूर्ति बनाने वाले की मिसाल दी गयी है. मूर्ति बनाने वाले ने अपने दिल के पर्दे फाड़े और उस जौहर को देखा जिससे ख़ूबसूरती की पुतलियां हथोड़े के ज़रिये पत्थर से निकाली हुई नज़र आती है. उसने इस जौहर को पहिचाना और समझ लिया कि यह मेरे दिल के पर्दे के भीतर है और मेरी ही ज़ात (व्यक्तित्व) है. फिर उसने क्या

किया ? उसमें ठहरने, उसमें एक होकर मिल जाने का यत्न किया. समुन्द्र से लहरें निकलीं और उसी में समां गयीं. यह उसकी तौहीद है, और तौहीद भी सच्ची और असली. वह दूसरी जगह कहाँ और किसको तलाश करता ?

तलब (जिज्ञासा) इश्क़ (उपासना) और मारफ़त (ज्ञान) की मंज़िलों को तय करता गया और अपने ही में हक़ीक़त (सत्य) वहदत (एकता) और वहदानियत (एकपन) का तमाशा देखा और उससे मिलकर एक हो रहा. सोचो यह तौहीद हुई या नहीं. कबीर साहब कहते हैं :-

गुरु मिले तब जानिये, मिटे मोह तन ताप

हर्ष शोक व्यापै नहीं , तब गुरु आपै आप.

चेला गुरु से मिलकर एक हो रहा है. गुरु उसमें और वह गुरु में. जुदाई का पर्दा हट गया. यह महवियत (सुन्न) का स्थान है. तीसरा तिल तलब का मैदान था ; सहसदल-कंवल में इश्क़ का सामान था. त्रिपुटी में मार्फ़त और गुरु दर्शन का. अब सुन्न में तौहीद और वहदत का निशान है. जो गुरु अब तक तीसरे तिल के अभ्यास के वक़्त बाहर नज़र आता था, उसी का ज्ञान और उसी का दर्शन त्रिपुटी में हुआ. अब सुन्न में वह हमारे ही अंदर है.

देना सीखो, लेने का नाम न लो, मन दो तब यह गुरु मिलेंगे. तन मन धन सब गुरु के अर्पण. िस्सेव पहले गुरु नहीं मिलते. असल बात को समझो. गुरुजन की बुराई न करो. यह असल भेद है. कबीर साहब कहते हैं :-

कबीर वे नर अंध हैं , गुरु को कहते और

हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर

गुरु इष्ट मैराज और मक़सद (ध्येय) है . उसूल से गिरा हुआ आदमी कहाँ ठहर सकता है ? इसलिए गुरु पर सब कुछ न्योछावर है :-

गुरु समान दाता नहीं , याचक शिष्य समान

चार लोक की सम्पदा , सो गुरु दीनी दान

सत्य नाम के पटतरे, देने को कुछ नाँय

कहँ लग गुरु संतोषिये, हबिस रही मन माँय

सब कुछ गुरु को दे दो. अपना सारा बोझ उनके सर पर रख दो, फिर आज़ादी से विचरते रहो. कबीर साहब कहते हैं :-

मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर

अब देने को क्या रहा, यूं कथ कहे कबीर

तन मन दिया तो भल किया, जासी सर का भार

जो कबहुँ कह 'मैं दिया' तो बहुत सहेगा मार

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय

कहत कबीर वा दास से, कैसे मन   पतियाय

तन मन दिया आपना, निज मन ताके संग

कहत कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु परसंग

निज मन को नीचे किया, चरण कंवल की ठौर

कहे कबीर गुरुदेव बिनु , नज़र न आवे और

सालिकों के बीच में गुरु की यह हैसियत है. जो ऐसा नहीं समझता है वह मरा हुआ है. वह तौहीद को क्या ख़ाक समझेगा ? गुरु मिले, असली तौहीद का पैग़ाम(सन्देश) सुनने में आया और वह मुवाहिद (एक) बन गया. अब कहना सुनना झक मारना है. जिसको गुरु नहीं मिला वह तौहीद के कलमे (वचन) सुनकर गुमराह (पथभ्रष्ट) हो गया. अहंब्रह्मास्मि और ' अनहलहक ' कहता रहता है और हक़ीक़त में न मुवाहिद है और न तौहीद का क़ायल. कहना ही कहना हाथ में है बाक़ी ख़ाली है . कबीर साहब कहते हैं :-

सतगुरु पूरा ना मिला, सुनी   अधूरी   सीख

स्वांग यती का पहन कर घर-घर मांगी भीख

इन्सान जिस तरफ दिल लगता है वैसी ही बातें उसमें पैदा हो जाती हैं. मसलन, फोटोग्राफर ने तस्बीर की तरफ़ दिल लगाया, फ़ोटो की खूबसूरती और उसकी असलियत दिल में पैदा हो गयी. मूर्ति बनाने वाले ने मूर्ति में दिल लगाया. मूर्ति के नक्शे-निगार (रूपरेखा) दिल में पैदा हो गए. नजूमी (ज्योतिषी) ने इल्म नजूम (ज्योतिष) में दिल लगाया. तमाम चाँद, सूरज व सितारे उसके दिल में जगमगा रहे हैं, और वह उनसे अलग कब है ? इसी तरह जिसने गुरु को दिल दिया, गुरु उसके अन्दर प्रगट हो गए और वह उनसे मिला हुआ वहदत के दरिया में तैर रहा है. गुरु तौहीद का मक़सद है और जो कुछ भी है गुरु है, बाक़ी और नहीं.

टिके भी कहाँ आकर ? अपने भीतर नूर (रौशनी) देखो . बाहर क्या धरा है ? जो कुछ है अपने अन्दर है. हर चीज़ अन्दर से बाहर आती है इसलिए तौहीद भी अन्दर है. उसे बाहर कभी नहीं ढूंढना चाहिए क्योकि जितना निगाह को बहिर्मुखी बनाओगे उतनी ही तफ़रके (विरोध) ज़्यादा बढ़ेंगे. सब्रो-क़रार (संतोष व शांति) अपने ही दिल में मिलता है. ख़ुशी और इतमीनान की हालत भी अन्दर है. तौहीद हो चुकी. ज़्यादा नहीं तो उसकी कुछ मुराद (आशय) ज़रूर समझ में आ गयी होगी.

कायनात (दुनियां) में सबको मिल कर रहना तौहीद है. अगर दिल में दाखिल होने का मौक़ा मिल गया तो तौहीद का समझना आसान है. अगर दिल बेक़रार है तो मुश्किल से समझ आएगी.

सब का मजमुआ (एक साथ रहना) ज़ात-वाहिद (एक जात) कहलाता है. न वह कभी किसी से जुदा (अलग) हुआ और न किसी से मिला. वह जैसा है वैसा ही है. हाँ, अगर नुक़्स और क़सूर हो सकता है तो इन्सान के ख्यालों मैं हो सकता है क्योकि वह जैसा सोचता है वैसा बनता है. एक आदमी पेड़ को देखता है, दूसरा उसको आदर्श समझता है, तीसरा उसको भूत ख्याल करता है. चीज़ जो थी अब भी है मगर ख्याल से अलग अलग नाम पैदा कर दिए. लालची को सीप में चाँदी, प्यासे को शराब में पानी, डरे हुए को रस्सी में साँप. किसी की आँख में बल होता है, यानी एक चीज़ में दो दिखाई देती हैं. यह गल्तियां सिर्फ़ दिल के मैले होने के व ख्यालात के नाक़िस (छोटा) होने के सबब से हुआ करती हैं. इसी तरह लोगों ने एक को अनेक मान लिया और वैसा ही कर रहे हैं. चूंकि ख्याल में दो समा गए इसलिए इन्सान द्वैतवादी और मुशरिक (दो के मानने वाला) हो गया है. यह ख्याली बीमारी है जो सिर्फ़ वाहमा (ख्याल) के पुख्ता करने से ठीक होगी. यही इसका इलाज है क्योकि यह दोपना भी तो वाहमा ही के सबब से आया है, तौहीद को बुरे भले तरीक़े से जैसा हो सका समझा दिया.

(५) इस्तग़ना

अब पाँचवी मंज़िल जिसको सूफ़ी लोग इस्तग़ना, यती वैराग्य, योगी निर्विकल्प समाधि कहते हैं, आती है यह सारे शब्द मुश्किल हैं और गलतफ़हमी (भ्रम) फ़ैलाते हैं. आमतौर से इस्तग़ना के माने बेपरवाही के होते हैं. यह ठीक भी है. मगर ज़्यादा दौलत वाले लोगों को भी ग़नी कहा जा सकता है. तौहीद एक बड़ी दौलत है, जिसे यह मिल गयी वह ग़नी (मालदार) हो गया. मुहताज़ व निर्धन लोगों में बेपरवाही नहीं होती. ग़नी (धनवान) में होती है. इसलिए दौलत का घनापन इस्तग़ना कहलाता है. वैराग्य के मानी हैं 'राग' का न होना. मगर वह अदम (न होना) नहीं है न उसका अभाव है. राग का घनापन हो जाना वैराग्य है क्योकि उसी हालत में आकर इन्सान तर्क व त्याग के मज़मून को समझता है. त्याग किस चीज़ का करना है ? माना, घर छोड़ा, स्त्री छोड़ी, जंगल में आये. यहाँ भी घर है और यहाँ भी वही माया साथ रहती है. इसलिए जब तक राग (आसक्ति) का घनापन न हो जाय तब तक वैराग्य नहीं होता. राग का घना होना ही सच्चा वैराग्य है. जब तक यह कमज़ोरी है तब तक कुछ न होगा.

तौहीद के राग का ख्याल पकाया गया . उसमें पुख्तगी आ गयी. वही वैराग्य हो गया और अब उसमें त्याग व तर्क है. त्याग व तर्क भी नाम है ख्याल और बहानों की ऊंची तरक़्क़ी का. जब तक आदमी कमज़ोर है तब तक जिस्म की कमज़ोरी उसको सताती है. वह इलाज कराता है और ताक़त देने वाले खाने खाता है और जिस्म का ख्याल रखता है. मगर जब वह मज़बूत और ताक़तवर हो गया, कमज़ोरी जाती रही तो उसको यह मालूम भी नहीं होता कि उसके जिस्म भी है या नहीं. पहले यह जिस्म बोझा मालूम होता था अब उसकी हालत कुछ और ही है और उसकी तरफ से वह बेपरवाह है. यही निर्विकल्प समाधि है जिसकी शुरुआत सविकल्प समाधि से होती है . योगी सिर्फ उस वक्त तक योगी है जब तक संयम करता हुआ किसी मक़सद (ध्येय) से मिला है और योग की तमन्ना रखता है. इस तमन्ना के घने होते ही वह और कुछ बन जाता है. ऐसा मालूम होता है कि अब उसमें तमन्ना व योग नहीं रहा. इसी हालत को निर्विकल्प कहते हैं. जब तक हबिस है, दोपना है. हबिस को पक्का हो जाने दो. जब सेरी (तृप्ति) आ गयी, ख्वाहिश जाती रही. यही इस्तग़ना है और कुछ नहीं.

इसी इस्तग़ना को संतमत में महासुन्न कहा जाता है. इस मुक़ाम या हालत पर पहुंचे हुए लोग हँस या परमहँस कहलाते हैं. जिनमें इस्तग़ना है वे सच्चे मानी में तारकुल दुनिया (त्यागी) हैं. यूं तो आम आदमी की निगाहों में वे अब भी दुनियां में हैं मगर जिनकी नज़र बारीक है उनको दुनिया की तरफ़ से बेपरवाही दीखती है.

सर बिरहना नेस्तम दारम, कुलाहे चार   तर्क

तर्क दुनिया, तर्क उक़्बा, तर्क मौला, तर्क़े तर्क

अर्थ - मेरा सर नंगा नहीं है, वह चार त्याग की टोपियों से ढंका हुआ है. पहले संसार का त्याग, फिर परलोक का त्याग, फिर ईश्वर का त्याग और फिर त्याग करने के विचार का भी त्याग.

कौन कहता है कि दुनियाँ को छोड़ो. क्या पकड़ोगे और क्या छोड़ोगे ? असल में द्वेतबाद की जगह में रहते हुए न गृहस्थ आ सकता है न त्याग, सिर्फ़ दिल की हालत का बदलना है कि न उसे किसी से प्रेम हो और न किसी से द्वेष, और यही सच्चा वैराग्य है.

मूड मुड़ाये क्या हुआ, किया जो घोटम घोट

मनुवा को   मूड़ा   नहीं, जा में सारी   खोट

तौहीद की मंज़िल तय करने पर जब इस्तग़ना आ गयी तब उस जगह पहुंचे हुए की रूह (आत्मा) खुश हो गयी. सारे रगड़े झगड़े दूर हो गये और वे मस्ती में आकर गाने लगे :-

सन्तों सहज समाधि भली

गुरु प्रताप भयो जा दिन से, सुरत न   अन्त   चली

आँख न मूँदू, कान न रूदूँ, काया कष्ट   न   धारूँ

खुले नयन में हँस हँस देखूं ,   सुन्दर   रूप   निहारूं

कहूँ सो नाम, सुनूं सोई सुमिरन, खाऊँ पिऊँ सो ,पूजा

गिरहन त्याग एक सम लेखूं,   भाव   मिटाऊं   दूजा

जहाँ जहाँ जाऊं सोइ परिक्रमा, जो कुछ करूँ सो सेवा

जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत,   पूजूँ   और   न   देवा

शब्द निरन्तर मनुबा अनुरत   मलिन   वासना   त्यागी

उठत बैठत कबहुँ न बिसरे ऐसी तारी लागी

कहे कबीर सो उनमन रहनी सो प्रगट कर गाई

दुःख सुख के एक परम् सुख, तेहि सुख रहा समाई .

मतलब यह है कि संत सहज समाधि भली है. जिस दिन से नेह हुआ है उस दिन से आत्मा गुमराह नहीं हुई है. न आँखों को बंद करता हूँ , न शरीर को कष्ट देकर तपस्या करता हूँ. आँखे खुली हुई हैं और मैं हँस हँस कर खूबसूरत चेहरे का दर्शन करता हूँ. जो मेरे मुँह से निकलता है, वही नाम है, जो कुछ सुनता हूँ वही सुमिरण है, जो खाता या पीता हूँ वही प्रसाद है. मेरी निगाह में ताल्लुक़ और बेताल्लुकी

एक जैसी है. द्वेष का ख्याल दिल से भगा दिया है. जहाँ जहाँ जाता हूँ वही तवाफ़ (परिक्रमा) है. मेरा सोना या लेट जाना सिजदा व बन्दगी है. अब और किसी देवता की पूजा नहीं करता. दिन रात अंतरी धुन में मस्त हूँ. ख़राब ख्यालात आप से आप दूर भाग गये. ऐसी मस्ती की समाधि की ताड़ी लगी हुई है. कबीर साहब फरमाते हैं यही उनमनी अवस्था है. मैने खुले शब्दों में यह गीत गाकर सुनाया है. दुःख सुख के परे एक और बड़े सुख की हालत है. मैं उसी में मस्त रहता हूँ . ऐसे लोगों के नज़दीक क़ैद व बन्द एक जैसे हैं . न बुरे न भले .

(६) फ़ना (लय)

पाँच मंज़िलें पूरी हो चुकीं. अब छटी कहते हैं. फना (भंवर गुफा) को भी साफ़ तरीके से मगर मुख़्तसिर (सूक्ष्म) तौर पर बयान करते हैं जिनसे उलझन पैदा होगी. घबराना नहीं. आम लोग फ़ना को अदम (नेस्ती-मिट जाना) कहते हैं. वे करें भी क्या ? असल मतलब को समझ भी नहीं सकते. दुनियाँ में हस्ती तो है मगर नेस्ती का पता नहीं. जो है सो है. इससे ज़्यादा कहना बेकार है. अदम और फ़ना के मानी लुग़त (डिक्शनरी) या सूफ़ी लोग चाहे कुछ समझावें, मगर वह एक हालत का नाम है जिसमें ज़ाहिर होने की सूरत नहीं है. है ज़रूर मगर इशारा ही इशारा है. इसलिए मिसाल से मदद लेनी पड़ती है. मसलन ज्योतिषी ने सूर्य, चाँद, सितारों को देखा. नज़र बाहर की तरफ़ से मुड़ी व दिल में आकर बैठ गयी और अब दिल में वे नूरानी क़ुरै (प्रकाशित पटल) रोशन है क्योकि वे भीतर ही से निकलकर बाहर जा खड़े हुए थे. उसने ग़ौर करना शुरू किया. नज़्ज़ारे बदलते गए. आखिर में दिल की हरकत भी बंद हो गयी और महवियत (बेहोशी की हालत) में चला गया जहाँ कुछ भी नहीं है. जागते समय हज़ारों सूरतें नज़र आती थीं. अब आँख बंद हुई. स्वप्न में वही तमाशे नज़र आने लगे क्योकि जागने के समय हमारे दिल में से ही बाहर आये थे. अब गहरी नींद आ गयी. पर्दा पड़ गया, अब क्या है ? जबाब मिलेगा ' कुछ नहीं '. मगर वह क्या कुछ भी नहीं है ? है तो ज़रूर, होने में शक नहीं. मगर नज़र नहीं आता. नज़र कैसे आवे ? आँखें बंद हैं, पपोटे बंद हैं, दिल बंद, कोई देखे भी तो किससे देखे व क्या देखे ? इसी का नाम अदम व फ़ना है और इसी को नेस्ती कहते हैं.

शुरू में इस जगह रूह का उतार हुआ, इसमें एक था, नीचे उतर कर अनेक होता गया. क्या इस कोई समझ नहीं सकता ? गहरी नींद में स्वप्न में उतर कर तब फिर जागृति में आते हैं और फिर जागृति से लौट कर स्वप्न में जाकर गहरी नींद में सो रहते हैं. यह रोज़ाना का व्यवहार है. सोचिये यह ग़लत है या सही. यही जागना, स्वप्न और गहरी नींद असल में अजल (उत्पत्ति) बरज़ख़ (स्थित) और अदम (लय) है. यही श्रष्टि स्थित व प्रलय है. यही दुनियां, उकवा और अदम है, यही ब्रह्मा, विष्णु व महेश की असली सूरतें हैं. यही रूहुलक़ुद्स बाप और बेटे हैं. यह सत-चित-आनंद है. इनको समझ लिया तो सब कुछ समझ लिया. अगर इनको नहीं समझा तो कुछ नहीं समझा. दुनियाँ का इल्म हुआ तो क्या हुआ ? यह इल्मी हालत बेदारी (जागने) का इल्म है जो बिलकुल महदूद (सीमित) व नाक़िस (तुच्छ) व ग़ैर-मुक़म्मिल (अधूरा) है.

तीन चीज़ें होती है :-

(१) देखने वाला,

(२) जिसको देखा जाता है, और

(३) देखने की शक्ति जो देखती है.

फ़नाइयत (लय अवस्था) में देखने वाला मौजूद रहता है और जिसको देख रहा है वह भी मौजूद है. मगर जिससे देखा जाता है (ज्ञान शक्ति) वहाँ पर जाकर वह चीज़ पीछे रह जाती है और कुछ अनुभव नहीं करती है. ज्ञान शक्ति का अभाव रहता है इसलिए कुछ दीखता नहीं. इसी को ' अदम ' (फ़ना) कहते हैं.

फ़ना नेस्ती (मिट जाना) को नहीं कहते. यह रूह (आत्मा) की एक हालत का नाम है जिसे संतों ने उन्मनी अवस्था कहा है. पुराने बुज़र्गों को और लफ्ज़ (शब्द) मिले ही नहीं. इससे फ़ना नाम रखा गया. वे बेचारे करते भी क्या ? मगर उनका मतलब नेस्त होना (मिट जाना) नहीं है.

अगर पांच मंज़िलें तै कर लीं तो अब फ़ना की मंज़िल पर आकर आराम नसीब होगा.

(७) बक़ा (पुनर्जीवन)

इसके बाद सातवीं मंज़िल बक़ा की है. जैसे फ़ना का समझना मुश्किल था वैसे ही बक़ा का समझना भी सहल नहीं है. 'फ़ानी ' के मानी हैं ' तब्दीली होने वाली हालत'. 'बक़ा' के मानी हैं 'बाक़ी', 'जो तब्दील न हो' ' जो न मरे न खपे' वही बाक़ी है. वह न कमाल (पूर्णता) है न ज़बाल (नीचे गिराब) है, न हस्ती है न नेस्ती, न ख़ुदा (ख़ुद आया हुआ) न किसी का लाया हुआ. जिसके सहारे दुनियां के तमाम तमाशे हो रहे हैं और होंगे उसी का नाम बक़ा है. इस आधार या सहारे का कोई नाम नहीं और सब नाम उसी के हैं. नाम न होते हुए वह नामी ग्रामी है. काम न करता हुआ वह कर्ता है. बग़ैर ज़बान के वह बोलता है. मतलब का ताला बग़ैर कुंजी के खोलता है. वही सबका शुरू, वही सबका आख़ीर है. भला यह किस तरह है ? उसकी किरणों का समुन्द्र, दरिया (नदी) नाले वग़ैरा में अक्स पड़ा. यह इन्तहा (आख़ीर) है. मगर इसका समझना बहुत कठिन है. यहां पर फरिश्तों (देवताओं) का भी गुज़र (पहुंच) नहीं. अगर थोड़ा बहुत भी समझ सकता है तो इन्सान (मनुष्य) ही समझ सकता है. यह हक़ीक़त (सत्य) है और हक़ (सत्य) है और इसी का नाम बक़ा (जो बाक़ी न रहे) है जो न कभी मरता है न पैदा होता है, वही सत्य है और सत्य-नाम है.

बीज से फल तक और फल से बीज तक - इसके सिवा और क्या है ? बीच की हालतों में यदि कोई शाख, तना, फूल के बीच अटकता है तो उसको यानी असल को नहीं देख सकेगा. वह हमेशा नज़र से ग़ायब रहेगा. जब फ़ना हुए अपनी छोटी सी नाक़िस और महदूद (सीमित) हस्ती को जबाब वह दे बैठे. वह सामने आयेगा और देखो अब तुम नहीं हो, वह ही वह है.

ख्वाब (सोना) बेदारी (जागना) और गहरी नींद - तीनों हालतें फ़ानी (नाशवान) हैं. कभी जागना कभी सोना. कभी गहरी नींद में होशो हबास खोना है. ये सब रोज़ बदलते रहते हैं क्योंकि बदलना इनका काम है. मगर तुम वही हो जो पहले थे. तुम नहीं बदले, गो तुम इनमें होते हुए कहे जा सकते हो मगर तुम यह तो नहीं हो. क्या इनसे तुम्हें अपनी हस्ती नज़र नहीं आती ? अगर नज़र नहीं आती तो अफ़सोस की बात है. जिस्म पैदा हुआ, बढ़कर जवान हुआ, बूढ़ा हुआ, मर गया. ये तमाशे तुम्हारे ही आधार पर तो होते रहते हैं. तुम न कभी पैदा हुए, न कभी मरे, न कभी बालिग़ थे, न बूढ़े थे. यह औसाफ़ (मरना-जीना) सिर्फ जिस्म के हैं. अगर अपनी ज़ात (व्यक्तित्व) को समझ लो. थोड़ी सी देर के लिए इस सिफ़त को छोड़ दो तो यह मुअम्मा (समस्या) आसानी से हल हो जाएगा. जब तक सिफ़ात (गुण) में अटके हो तब तक रसाई होना मुहाल है क्योंकि सिफ़ात में नुक़्स (दोष) महदूदियत (सिमित होने का) है.

इल्म व अक्ल, ज्ञान व ध्यान सब फ़ानी (नाशवान) हैं. इन्सान कभी जाहिल (मूर्ख) है, कभी आक़िल (बुद्धिमान) ,कभी नाक़िस (मूढ़) कभी कामिल (पूर्ण) .कभी आमिल (अभ्यासी) कभी आलिम (विद्वान्). अक्ल गयी दीवानगी आयी, सेहत गयी बीमारी आ गयी मगर जात (जाति) तो जैसी थी वैसी ही है. उसको क्या सदमा पहुंचा ? मगर तुम तो सिफ़ात (गुण) के ज़र-ख़रीद (मोल लिया हुआ) ग़ुलाम हो गए. नाम की हविस, इज़्ज़त व दौलत की हविस, नमूद (दिखावा) और शोहरत की हविस, जब तक ये हैं वो नहीं है, क्योंकि नज़र इनमें जमी है. जो निगाह के सामने है वह नज़र नहीं आता. निगाह को बदल दो. अपने अन्दर तलाश करो. जब तक नीचे की तरफ़ रागिब हो ऊपर नहीं देखते और जब ऊपर देखने लगे तो वही वह है और उसके सिवाय यहाँ दूसरा है कौन ?

नादान कहते हैं कि बूँद दरिया (नदी) में गिरी, दरिया हो गयी. कहाँ की बूँद कहाँ का दरिया हो गयी. कहाँ का गिरना और कहाँ का पड़ना ? तुम न बूँद हो न दरिया. यह निस्बती (तुलनात्मक) हालतें हैं. निस्बत (तुलना) जुज़बियात (आंशिकता) में है. जो असल को देखने वाले हैं उनको जुज़ (अंश) से क्या काम ? अगर वह बूँद हैं तो तुम दरिया हो.

साफ़ साफ़ कहा जाय तो झगड़ा मचता है. सूफ़ी अलग नाराज़.पन्थाई और सलूक वाले अलग खफ़ा. अगर वह हमसे ज़ुदा (भिन्न) था या है तो बाहर क्यों नहीं तलाश की जाती ? क्यों लोग अन्दर तलाश करने की हिदायत (आदेश) करते हैं? क्यों यह नहीं कहा जाता कि जबरूत, लाहूत, नासूत सब तुम्हारे भीतर हैं, राह भी अपने अन्दर बताई जाती है. अगर खोल कर साफ़ साफ़ कहा जाता है तो लोगों के माथे पर नाहक सिलवटें पड़ती हैं. एक सूफ़ी का कलाम (वचन) है :-

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब ब बन्द

गर न बीनी सिर्रे हक़ बर मन ब बन्द

अर्थ :- आँख को बन्द करो, कान को बन्द करो, और होंटो को बन्द कर लो, और इस पर भी असलियत न खुले तो मुझ पर हंसना।

गुरु नानक साहब कहते हैं :-

तीन बन्द लगाय कर, सुन अन्दर टंकोर

नानक सुन्न समाधि नहीं साँझ नहीं भोर

अगर नाक, कान, आँख बन्द करने से वह नहीं मिलता है तो कहाँ मिलता है, बाहर या भीतर.? अगर वह भीतर से मिलता है तो ज़ाहिर है कि वह हमारे अन्दर हमेशा से था और हम वही हैं जो पहले थे. हाथ को घुमा कर क्यों नाक पकड़ी जाय ? सीधे क्यों न पकड़ी जाय ताकि यह झगड़ा हमेशा के लिए दूर हो जाय. मगर यार लोग कहते हैं कि इससे दुनिया में गुमराही (पथभ्रष्टता) फैलेगी. मालूम होता है कि आप दुनियां के ठेकेदार बन कर आये हैं ? क़ाज़ी जी क्यों दुबले, शहर के अंदेशे से. इसके लिए पहले ही से कहा गया है कि वगैर इश्क़ के मार्फ़त नहीं, वगैर मार्फत के तौहीद नहीं, वगैर तौहीद के इस्तगना नहीं, वगैर इस्तगना के फ़ना नहीं, वगैर फ़ना के बक़ा नहीं. यह तो नहीं कहा जाता कि यूँही बड़बड़ाते रहो. जिस इंसान के दिल के परदे चाक हो गए हैं, या हो रहे हैं उसी के लिए यह पैग़ाम (सन्देश) है. पैग़ाम इंसान के लिए ही होते हैं. अगर तुम इंसान हो तो मरहलों (समस्याओं) से गुज़रना पड़ेगा, अगर इंसान नहीं हो तो अल्लाह-बाक़ी हविस. तुम अपना काम करो, हम अपना काम करें. मगर हमारी ज़बान को क्यों रोकते हो और बंद करते हो ? खुलकर खेलने क्यों नहीं देते ?

वह क्या था, क्या है - न कभी जाना गया और न जाना जा सकेगा. पैदायश के सिलसिले में वह शुरू से एक था. एक से दो हुआ, दो से तीन, तीन से बेशुमार (अनन्त) और फिर कायनात (दुनियां) में फ़ैल गया. और जब सिलसिला ख़त्म होगा बेशुमार (अनन्त) से तीन, तीन से दो, दो से एक होगा. मगर यहां पर कौन बिगड़ा और कौन सुधरा ? बिगड़ने वाले बिगड़े बनने वाले बने. मगर वह जैसा था वैसा ही रहा. उसमें तब्दीली नहीं आयी. इसी को बक़ा (पुनर्जीवन) कहते हैं. सब मिट जाते हैं, वह अमिट है, वही बाक़ी है और वही तुम्हारी ज़ात (असल) है. इसकी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं मगर तबालत (उलझन) होगी. समुन्द्र में लहरें उठती हैं. उठी और उठ कर बैठ गयीं. अब उनका कहीं नामोनिशान (चिन्ह) नहीं नहीं रहा. सूरज चमक रहा है, बेशुमार घड़ों में उसका अक्स पड़ रहा है. जो घड़ों को देखते हैं उनको एक ही सूरज हज़ारों जगह नज़र आ रहा है और जो,ऊपर देखते हैं उनको एक ही सूरज नज़र आ रहा है. तमाम अक्स भिन्न भिन्न घड़ों में उसी एक सूरज के तो हैं. उस एक सूरज के अलावा यहां है कौन ?

आखिर यह है क्या ? कुछ समझ नहीं आता. समझ में आये कैसे ? नज़र कोताहबीन (कम देखना) व गैरियतबीन है. किसी ने रस्सी देखी, उसको सांप समझा, वह सांप हो गया. वह काटने दौड़ता है. जब देखने वाले का दिल शान्त हो गया, अब वह रस्सी है, सांप नहीं. सांप रस्सी के आधार पर पैदा हुआ था, इसी तरह यह संसार है. लालची आदमी ने सीप देखी, उसको चाँदी का भ्रम हो गया, जब उसको उठाया, दिल ठिकाने आया, चाँदी गायव.

सवाल फिर भी वही रहा. दिल कैसे बिगड़ा ? जबाब यह है कि नज़र (दृष्टि) जुज़बियात (अंशों) की तरफ गयी. नज़र को एक पहलू पर जमा दो. दूसरे पहलू आप ही गायब हो जावेंगे. जुज़बियात (अंशों) से हटकर कुल (सम्पूर्ण) की तरफ चले जाओ. इसी तरह ज्ञान व अज्ञान के तमाशे होते रहते हैं और जब यह दोनों ओझल हो जाते हैं तब वही एक रह जाता है. बात मुश्किल है, कोई कहे तो कैसे ? जब तक हम ख़ुदी (स्वार्थ) व अनानियत (अहंभाव) के पंजे में फंसे हुए हैं तब तक मौत के मुंह में हैं क्योकि अनानियत (अहंभाव) के पहलू हर समय बदलते रहते हैं और यही बदलना मौत है.

समुन्द्र में क्या चीज़ घटी या बढ़ती है ? लहरें या समुन्द्र ? लहरों के लिए कहा जा सकता है मगर समुन्द्र को क्या खतरा, वह तो जैसा था वैसा ही है. इसी का नाम बक़ा है.

इसी तरह हक़ीक़त (सत्यता) के दरिया (नदी) में जब मौजें उठती हैं उस समय जुज़्बी (आंशिक) निगाह बनाकर हैवान(पशु), इंसान (मनुष्य) फ़रिश्ते (देवता), सूर्य, चाँद , सितारे, सब कुछ देख लो सुन लो. यह आते जाते, मरते खपते, बनते बिगड़ते रहते हैं. मगर जब कुल (सम्पूर्ण) की तरफ नज़र जाएगी . जुज़बियात (अंशों) का तमाशा ग़ायब हो जायेगा और फिर कुल का ख्याल भी जाता रहेगा. यही बक़ा है और इसको मौत का खतरा नहीं है क्योकि मौत जुज़ (अंश) में है, कुल सम्पूर्ण में नहीं अगर नज़र वसीह (विशाल दृष्टि) के साथ कुल को समझ लिया है.

जुज़ (अंश) और कुल (सम्पूर्ण) दोनों की गुंजायश सिर्फ़ तुम्हारे अपने ख़्याल में है और यह निसबती (तुलनात्मक) बातें भी अनानियत (अहंपने) से गढ़ी गयी है. इनका तर्क (छोड़ना) बक़ा है क्योकि बक़ा में निसबती (तुलनात्मक) हालतें नहीं हैं. हमारी असली मुराद (मंशा) के लिए बक़ा का शब्द काफ़ी नहीं है और अगर दूसरा लफ्ज़ (शब्द) गढ़ा जाय तो व भी ऐसा ही होगा क्योंकि यह सब जुज़बी (आंशिक) है.

अब फिर शुरू से आखिर तक की मंज़िलों को याद करने के लिए इशारे दिए जा रहे हैं.

हममें तलब (इच्छा) पैदा हुई, इश्क़ (प्रेम) आया. इश्क़ से इर्फान (ज्ञान) पैदा हुआ फिर तौहीद (एकभाव) और वहदानियत (एकपने) का ख्याल हमारे दिल के अन्दर ही पैदा हुआ. फिर इसमें इस्तगना (उपराम) भी आयी. उसी में फ़ना (लय) भी हुए और उसी से बक़ा (पुनर्जीवन) में क़ायम (स्थित) हुए. बाहर से कुछ किया न धरा. कुछ न था और न होगा, सब में है. मगर इस ' अहं ' को न कहना चाहिए बल्कि चुपचाप रहना चाहिए नहीं तो ग़लत फहमी (भ्रम) होगी. कहने को बस इतना ही काफ़ी है जो है वह है,

कबीर साहब कहते हैं :-

एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार

जैसा है वैसा रहे कहे कबीर विचार

यही बक़ा है, यही सत्य है, सत्य नाम है, सत्य लोक है.

संतमत के उसूलों (सिद्धांतों) से जो ग़लतफहमी (भ्रम) फैली हुई है उसको दूर करने के लिए और जो रूहानियत (आध्यात्म) क शौक़ीन हैं इनको फ़ायदा पहुँचाने की गरज़ (उद्देश्य) से यह लेख लिखा गया. जो लोग फ़ायदा उठा सकेंगे तो समझा जायेगा महनत ठिकाने लगी. फिर बड़े बड़े ग्रन्थ देखने की ज़रूरत नहीं रहेगी. मगर किसको ज़रूरत नहीं रहेगी.? जो तसव्वुफ़ पसन्द(संतमत) को मानने वाले हैं.

फनाइयत (लय अवस्था) तीन होती हैं :-

(१) फ़नाफ़िल शेख (गुरु में लय होना)

(२) फ़नाफ़िल रसूल (अवतार में लय होना)

(३) फ़नाफ़िल अल्लाह (परमेश्वर में लय होना)

वग़ैर गुरु में फ़नाइयत हासिल किये (लय हुए) हुए रसूल (अवतार) और परमात्मा में फ़नाइयत (लय) नहीं हो सकती.

गुरुदेव कल्याण करें और समझने की तौफ़ीक़ दें .